आहारदान

क्या? कब? क्यों? कैसे? कहाँ? किसके लिये? किसके द्वारा? फल क्या?

उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

प्रस्तुति: निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला

संस्करण : प्रथम – 3000 प्रतियाँ, सन् 2000
: द्वितीय– 5000 प्रतियाँ, सन् 2003
I.S.B.N. No. : 81-878280-09
@ **सर्वाधिकार सुरक्षित** : प्रकाशकाधीन

आहारदान

उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

पावन आशीष : परम पूज्य राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी महाराज

सम्पादक : ऐलक श्री 105 विमुक्त सागर जी

सहयोगी : क्षुल्लक श्री 105 विशंक सागर जी

प्रकाशक : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला
e-mail : nirgranthmala@rediffmail.com

मूल्य : स्वाध्याय

ग्रंथ प्राप्ति स्थान :

1. चन्द्रा कॉपी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ.प्र.)
2. श्री दि0 जैन ऋषभदेव मंदिर,
ऋषभपुरी, टूण्डला चौराहा, टूण्डला जिला फिरोजाबाद (उ.प्र.)

मुद्रक :

अनिल कुमार जैन
चन्द्रा कॉपी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ.प्र.) फोनः 2360195, 2260938
e-mail : chandraagra@yahoo.com

प्राक्कथन

ज्ञान वही पूज्य है जो आचरण में उतर जाये। बिना श्रद्धा के ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है। आत्म सिद्धि के लिए तो पूर्ण श्रद्धा के बाद ज्ञान और आचरण की पूर्णता आवश्यक है। ज्ञानाचरण की एक सम्यक् प्रवृत्ति दान है। आचार्यों ने जिनागम में **''अनुग्रहार्थं स्वस्याति सर्गोदानम्''** अर्थात् स्वयं अपने और दूसरों के उपकार के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना दान कहा गया है।

निरपेक्ष बुद्धि से सम्यक्त्व पूर्वक सत्पात्र को दिया गया अलौकिक दान दातार को परम्परा से मोक्ष प्रदान कराता है। यही कारण है कि गृहस्थ धर्म में दान की प्रधानता है। दान को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहला अलौकिक दान जो दान साधुओं को दिया जाता है इसके आचार्यों ने चार भेद कहे हैं। आहार दान, औषधिदान, शास्त्रदान और अभयदान। वसुनंदि श्रावकाचार जैसे ग्रंथों में कुछ आचार्यों ने अभयदान के स्थान पर वसतिका दान का उल्लेख किया है। दूसरा लौकिक दान है इसके भी चार भेद हैं। (1) दयादन्तिः अनुग्रह करने योग्य प्राणियों के समूह पर दया करना, (2) पात्रदन्तिः मुनिराजों को नवधा भक्तिपूर्वक तथा साधर्मी आदि जनों को यथा योग्य सम्मानपूर्वक जो दिया जाये, (3) समदन्तिः साधर्मी जनों को भूमि, कन्या, धन, उपकरण आदि देना, (4) अन्वयदन्ति (सकलदन्ति)ः अपने वंश की प्रतिमा के लिए पुत्रों को धन, सम्पत्ति, कुटुम्ब समर्पण करना।

इन दो प्रकार के दान के मूल भेदों के अलावा दान के तीन भेद और किए गए हैं जो लोक व्यवहार में यश अयश की दृष्टि से देखे गए हैं। (1) सात्विकदानः यह उत्तम दान है अतिथि को उसके कल्याण के लिए श्रद्धा पूर्वक दिया जाता है। (2) राजसदानः जो दान अपने यश के लिए किया गया हो थोड़े समय के लिए चकित करने वाला तथा दूसरों से दिलाया गया हो। (3) तामसदानः जिसमें पात्र अपात्र का ख्याल न किया गया हो, अतिथि का सत्कार न कराया गया हो, निंदा हो तथा दासों सेवकों द्वारा कराया गया हो।

उपरोक्त वर्णित सभी प्रकार के दानों में आहारदान की श्रेष्ठता का प्रतिपादन जिनागम ग्रंथों में आचार्य भगवन्तों ने किया है। चारित्र शुद्धि विधान में एषणा समिति के वर्णन में छियालीस दोषों से रहित मुनिराज को जो आहार दान दिया जाता है उससे 414 प्रकार के पापों की मलिनता नष्ट होती है। जैसे पात्र को दान दिया जाता है वैसे फल की प्राप्ति का उल्लेख जैनागम ग्रंथों में आया है। मिथ्यादृष्टि व्यक्ति द्वारा उत्तमपात्र को दिया गया आहारदान उत्तम भोगभूमि में तथा जघन्य पात्र को दिया गया दान जघन्य भोगभूमि में उत्पन्न कराने का हेतु बनता है।

प्रथमानुयोग इस बात का साक्षी है कि राजा श्रेयांस ने प्रथम तीर्थेश भगवान ऋषभदेव को आहारदान दिया जिससे वह तीन लोक का सर्वश्रेष्ठ दानी कहा गया।

ज्ञान ध्यान तपः युक्त परम पूज्य महान विद्वान 108 मुनिराज श्री निर्णय सागर जी महाराज द्वारा लिखित आहारदान कृति से अनेक भव्यों का महान उपकार होगा। निर्ग्रंथ गुरुओं के लिए दिया जाने वाला आहारदान दोष रहित रहे और यह दान गृहस्थ को परम्परा से मोक्ष का हेतु बने इस भावना की साकारता में यह कृति कल्याणपथप्रदायिनी है। प्रत्येक श्रावक को निरन्तर ऐसी कृतियों का स्वाध्याय कर अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करना चाहिए। आहारदान की निर्दोष औषधियों के उपयोग प्रयोग विधि के साथ सूक्तियों के समाहार कर ग्रंथ को इतना लोकोत्तर बना दिया जो निरन्तर स्वाध्याय के साथ आत्मसात करने योग्य है।

आशा है ऐसे महान ग्रंथ भव्यों का महान उपकार करेंगे।

टीकमगढ़ (म.प्र.)
26 जनवरी 2000

—प्रतिष्ठाचार्य पं. विमल कुमार जैन सोंरया
प्रधान सम्पादक ''वीतरागवाणी'' (मासिक)

संपादकीय

भारत एक धर्म प्रधान देश है जहाँ परमात्मा की तरह धर्म एवं धर्मात्माओं की भी पूजा की जाती है। धर्म का अस्तित्व, साधर्मियों के विकास एवं संवर्धन पर आधारित है। धर्म ध र्मात्मा के बिना नहीं होता है। धर्मात्माओं की धर्म साधना, धार्मिक पुरुषों के सत्संग, द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव की अनुकूलता के साथ–साथ शुद्ध आहार पर भी निर्भर करती है; अतएव भारतीय श्रमण संस्कृति के अनुसार सत्पात्रों को आहार देकर स्वयं भोजन करना सद्गृहस्थ (श्रावक) का परम कर्त्तव्य कहा है।

बिना भूख के भोजन करना विकृति है; भूख लगने पर भोजन करना प्रकृति है एवं सत्पात्र या साधु पुरुषों को भोजन कराकर भोजन करना भारतीय संस्कृति है। जैन धर्म ही नहीं बल्कि विश्व का प्रत्येक धर्म आहारदान को अनादिकाल से अत्यन्त महत्वपूर्ण धर्म मानता रहा है। आज भी सभी धार्मिक पुरुष दान एवं पूजा आदि से मनुष्य भव की सार्थकता को उपलब्ध ा कर रहे हैं। जैन दर्शन में आहारदान देने की भी एक विधि है। बिना विधि के दिया गया आहारादि दान संसार वृद्धि का कारण भी हो सकता है। विधि पूर्वक दिया गया दान नवधा भक्ति, दाता के सात गुण एवं पाँच आभूषणों से सहित होकर देना ही कहा गया है। संसार के अन्य भिक्षु तो रोटियों के पीछे भागते हैं अर्थात् उनकी साधना उदर पूर्ति के लिए होती है किन्तु दिगम्बर जैन संत शुद्ध आत्मोपलब्धि के लिए साधना करते हैं अतः उनके पीछे रोटियाँ नहीं, बल्कि संसार का पूरा वैभव दौड़ता है। सत्पात्रों के तीन भेद होते हैं। ये तीनों ही पात्र नवधा भक्ति के योग्य होते हैं। बिना भक्ति के दिया गया दान धर्म नहीं हो सकता, अतैव उक्त कृति में दान, दान के भेद, दाता के लक्षण, दूषण–भूषण, सामान्य एवं विशेष गुणों के अतिरिक्त पात्र, पात्रों के भेद, पात्रों के गुण, लक्षण, दान के फल एवं दान की विधि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

आचार्यों ने समीचीन ज्ञानदान का फल केवलज्ञान, अभयदान का फल त्रैलोक्यपूज्य अवस्था की प्राप्ति, औषधिदान का फल परम निरोगिता की प्राप्ति एवं आहारदान का फल परमोत्कृष्ट भोग अर्थात् अनंत सुख की प्राप्ति कहा है।

उक्तं च–

ज्ञानवान ज्ञानदानेन निर्भयोऋभयदानतः।
अन्नदानात् सुखी नित्यं, निर्व्याधि र्भैषजं भवेत्॥

यूं तो चारों दानों का ही अपने आप में विशेष महत्व है किन्तु आहारदान की श्रेष्ठता को नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि एक आहारदान देने से चारों दान दिये जाते हैं। आहार ही औषधि है; आहार से ही ज्ञानाध्ययन संभव है एवं आहार से ही प्राणों की रक्षा होती है। जिस प्रकार णमोकार मंत्र के समान के समान मंत्र, अहिंसा के समान धर्म, वीतराग देव के समान

देव, निर्ग्रंथ साधुओं के समान गुरु, ज्ञान के समान सम्यग्ज्ञान, संयम के समान सुख का हेतु अन्य कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार क्षुधा के समान रोग और आहारदान के समान परमौषधि तीन लोक में नहीं है। आहारदान से ही षट्आवश्यक कर्त्तव्यों का, अहिंसादि पाँच महाव्रतों का, समितियों का, 28 कृतिकर्मों का, बारह तपों का, उत्तम क्षमादि दस धर्मों का, आज्ञा विचय आदि 10 धर्मध्यानों का पालन करना एवं अनित्य आदि भावनाओं का भाना, संयम की साधना करना, 13 करण और चरणों का पालन करना संभव है। बिना आहार के शरीर की स्थिति नहीं रह सकती है और बिना शरीर के कोई भी धर्म नहीं किया जा सकता।

उक्तं च –

चारित्रं चिनुते तनोति विनयं ज्ञानं नयन्युन्नतिं,
पुण्णाति प्रशमं तपः प्रबलय त्युल्लासयत्यागम्।
पुण्यं कन्दल यत्यद्यं दलयति स्वर्गं दाति क्रमात्,
निर्वाण श्रिय मातनोति निहितं पात्रे पवित्रं धनं॥

अर्थात् पवित्र पात्र को दिया गया दान चारित्र का संचय करता है, विनय को बढ़ाता है, ज्ञान की वृद्धि करता है, प्रशम (शांत) को परिपक्व करता है, तप को प्रबल बनाता है, आगम के ज्ञान को उल्लासित करता है अर्थात् शास्त्र ज्ञान की वृद्धि करता है, पुण्य की जड़ को पुष्ट करता है, पापों को नष्ट करता है, स्वर्ग को देता है और क्रम से मोक्ष रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कराता है।

''**आहारदान**'' नामक लघु कृति का सम्पादन मैंने अपनी अल्पबुद्धि से प.पू. मुनिवर श्री निर्णय सागर जी महाराज के शुभाशीष से किया। मैं प.पू. मुनि श्री निर्णय सागर जी महाराज का ऋणी हूँ जिन्होंने इस कृति का सृजन कर सभी श्रावकों के लिये आहारदान विधि को सरल एवं सुबोध शैली में लिखकर संकेत किया है।

पुनः पूज्यश्री के श्री चरणों में कोटिशः नमन।

–ऐलक विमुक्त सागर

22 मार्च 2000, फिरोजाबाद

आमुख

जैन ग्रन्थ हों या जैनेतर, सभी यह मानते हैं कि धन की शोभा दान से है। समाज का एक अंग यदि निर्बल हो तो सबल अंग का यह कर्त्तव्य है कि उसे सहारा दे। सहारा देने में धन चूँकि सहायक है, इसलिये ऋग्वेद का आदेश है–**"शतहस्त समाहर, सहकृसहस्त संकिर** " अर्थात् सैकड़ों हाथों से धन इकट्ठा करो और हजारों हाथों से उसे बाँटो। कौटिल्य ने दान को ही धर्म कहा है। एक नीति वाक्य है–**"जो नहीं करे सुदान, ताको धन आमिष समा"।**

जैनधर्म के अनुसार आवश्यकता से अधिक धन इकट्ठा करना पाप है और दान से इस पाप का प्रायश्चित होता है। दान का उद्देश्य राग–द्वेष का अभाव करना है। यह दान मोक्षमार्ग में सहायक है।

अपनी न्याय की कमाई में से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद जो बचे, उसका कुछ भाग मानव–सेवा और सद्गुणों की सुरक्षा के लिये खर्च करना ही दान कहलाता है। दान करने से देने वाले और लेने वाले दोनों को लाभ होता है। दाता का हित तो यह है कि दान देने से उसके लोभ की मात्रा कम होती है और उसमें त्याग की भावना का विकास होता है, जबकि दान प्राप्त करने वालों को अपनी जीवन–यात्रा में उस दान से मदद मिलती है और वे किसी अभाव या विवशता के रहते हुए भी धर्म के मार्ग से च्युत नहीं होते।

सत्पात्रों के लिये दान देने की प्रवृत्ति को जैनधर्म में गृहस्थ के षटावश्यकों में स्थान दिया गया है। **"रयणसार"** के अनुसार दान और पूजा गृहस्थ के मुख्य कर्त्तव्य हैं और उनके बिना श्रावकत्व अधूरा है। साधु के लिये दिये गये दान को अलौकिक माना गया है उसमें भी आहार दान का विशेष महत्व है। साधु को खिलाये बिना स्वयं खाना अशोभनीय है। मर्यादा–पुरुषोत्तम श्रीराम तो वनवास की अवधि में भी इस नियम का निर्वाह करते रहे थे। कुरलकाव्य में लिखा है– '**जब घर के द्वार पर अतिथि हो, तब चाहे अमृत ही क्यों न हो, अकेले नहीं पीना चाहिये**'।

दिगम्बर साधु की उत्तम पात्र है। वह धर्मात्मा पुरुषों के द्वारा नवधा भक्ति पूर्वक दिया हुआ आहार दिन में एक बार और वह भी अल्प मात्रा में ग्रहण करते हैं। इस प्रासुक या निर्दोष आहार को पाकर ही वह महामुनि महाव्रत रूप संयम, तपश्चरण और रत्नत्रय की साधना करता है। आहार से प्राप्त बल पर ही वह सामायिक, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, ध्यान और ज्ञानाभ्यास की साधना करता है। इसीलिये विद्वानों ने कोटि स्वर्ण के दान से आहार दान को बड़ा बताया है। आचार्य समन्तभद्रस्वामी ने कहा है कि आहार दान से सुन्दर रूप, उच्च गोत्र, भोगभूमि के भोग और स्वर्ग के सुख तो मिलते ही हैं, एक दिन दाता स्वयं त्रिलोकपूज्य भी बन जाता है। ठीक ही है– '**आहारदानतो दानं नोत्तमं विद्यते भुवि**' अर्थात् आहार दान से बढ़कर उत्तम दान पृथ्वी पर दूसरा नहीं है।

आगम में लिखा है कि आहार दान में सभी दानों का फल निहित है। क्षुधा रोग के शमन से **औषधिदान** का, स्वाध्याय के लिये शक्ति प्राप्त होने से **ज्ञानदान** का और प्राणों का आधार होने से **अभयदान** का फल स्वतः ही प्राप्त होता है।

आहार दान के प्रकरण में अन्य भी अनेक बिन्दु विचारणीय हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उसकी परिभाषा से लेकर उसके भेद–प्रभेदों और दोषों तक का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। आहार दान की विधि क्या है और क्या है उसका फल, इसकी सम्पूर्ण जानकारी भी इस पुस्तक से पाठकों को आसानी से सुलभ हो सकती है। सत्पात्र का स्वरूप, दाता के लक्षण और उसके विभिन्न रूपों का दिग्दर्शन भी एक ही पुस्तक में मिल जाता है। पुस्तक के अन्त में त्यागी–व्रतियों द्वारा ग्रहण करे योग्य दवाओं, भक्ष्य पदार्थों की मर्यादा, सूतक–पातक की विधि आदि के उल्लेख से इस पुस्तक का महत्व और भी बढ़ गया है। प्रश्नोत्तर शैली में लिखित यह रचना निःसंदेह अत्यन्त उपयोगी बन पड़ी है। विभिन्न ग्रन्थों से संकलित 121 सूक्तियाँ पठनीय हैं। कुछ सुभाषित हिन्दी में भी हैं।

इस पुस्तक के यशस्वी लेखक **पूज्य मुनि श्री निर्णयसागरजी महाराज** एक सतत् ज्ञानाभ्यासी संत हैं। वात्सल्यमूर्ति एवं सरलस्वभावी तो वह हैं ही। उनके संघ में किसी भी प्रकार के आडम्बर के दर्शन नहीं होते। उनकी चर्या सहज और निर्दोष है। इस वर्ष इस नगर के धर्मप्रेमियों को सौभाग्य से उनके वर्षायोग का सुयोग मिला। धर्मोपदेश, सम्यग्ज्ञान धर्म संस्कार/शिक्षण शिविर, सामान्य ज्ञान परीक्षा, अहिंसा–शाकाहार महाकुम्भ तथा विधानादि के आयोजनों से अच्छी धर्म–प्रभावना हुयी। इस बीच में मुनिश्री का चिन्तन और लेखन भी चलता रहा है। यह पुस्तक उनके इस चातुर्मास की ही उपलब्धि है। उनकी श्रम–साधना प्रणम्य है।

आशा है, इस पुस्तक का व्यापक स्वागत होगा।

नरेन्द्र प्रकाश जैन

(नरेन्द्र प्रकाश जैन)

104 नई बस्ती, फीरोजाबाद

अध्यक्ष: अ.भा.दि. जैन शास्त्री परिषद

सम्पादक: जैन गजट

हमारी भावना

आज
के समाज
में व्याप्त आहार
दान सम्बन्धी
अनसुलझी
जिज्ञासाओं के अन्धेरे
में साधकों की साधना में सहायक इस
चर्या के निर्विघ्न एवं निर्दोष पालन कराने हेतु
यथार्थ समाधान की लौ घर-घर में जलाने के लिये
उपाध्यायश्री निर्णय सागर जी के अनमोल ज्ञान रूपी
दीपक का सार्थक प्रयोग किया गया है।
'आहारदान' को एक बार एकचित्तता
से पढ़कर कृति को
कृतार्थ करें।

–: मुद्रक :–
अनिल कुमार जैन
चन्द्रा कॉपी हाउस, आगरा

॥ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥

आहारदान

क्या? क्यों? कैसे? कब? कहाँ? किसके लिए? किसके द्वारा? फल क्या?

जिज्ञासा 1. दान किसे कहते हैं?

समाधान : स्व एवं पर उपकार के लिए न्यायोपार्जित धन से निर्मित आहार आदि का देना दान कहलाता है।

जिज्ञासा 2. दान के द्वारा स्व एवं पर का उपकार किस प्रकार सम्भव है?

समाधान : जिस वस्तु का हमने त्याग किया है, उसके प्रति मूर्च्छा का त्याग होने से उस सम्बन्धी हम अशुभ आस्रव एवं पाप बन्ध से बच गये तथा जिस साधकादि (सत्पात्र) को दान दिया है उसकी साधना का 1/6 भाग = लगभग 17% पुण्य का आस्रव दान करने वाले को हुआ। इस प्रकार स्व उपकार हुआ। इसके साथ ही दान लेने वाले साधुओं की साधना भी बिना आहार के सम्भव नहीं है अतः पात्रों का भी उपकार हुआ। अतएव स्व–पर कल्याण आहार आदि दान के माध्यम से नियामक है।

जिज्ञासा 3. आपने न्यायोपार्जित धन की बात क्यों कही? क्या अन्यायोपार्जित धन/द्रव्य से दान नहीं दे सकते? यदि नहीं तो क्यों?

समाधान : न्यायोपार्जित द्रव्य का ही दान देने से सातिशय पुण्य का बन्ध, अशुभ कर्मों का संवर व निर्जरा सम्भव है। अन्यायोपार्जित द्रव्य का दान पापास्रव का ही हेतु है, उससे लाभ के स्थान पर हानि अधिक है।

जिज्ञासा 4. तो क्या पापोपार्जित धन/द्रव्य का दान नहीं करना चाहिए? क्या वह धन धर्म कार्यों में व्यय न करें? अथवा क्या उसे पाप कार्यों में ही लगा दें?

समाधान : पापोपार्जित धन धर्म के कार्यों में नहीं लग सकेगा तथा पुण्य कर्म करने की भावना कभी नहीं बनेगी यदि उसे धर्म कार्यों में लगा भी देंगे तो भी समीचीन फल देने में असमर्थ होगा। किन्तु फिर भी पाप कार्यों की अपेक्षा पुण्य कार्यों में उस धन को लगाना श्रेयस्कर है। यदि लगा सकें तो, यही आपके धन की परीक्षा है कि वह पुण्य पुद्गल है या पाप।

जिज्ञासा 5. दान के मुख्य रूप से कितने भेद होते हैं? नाम बताइये।

समाधान: दान के मुख्य रूप से चार भेद होते हैं :

1. आहार दान
2. औषधि दान
3. शास्त्र/ज्ञान दान
4. अभय दान

जिज्ञासा 6. क्या इसके अलावा दान के और भेद भी सम्भव हैं?

समाधान: हाँ, इसके अलावा दान के और प्रकार भी सम्भव हैं। **यथा–** जीर्ण मन्दिरों के जीर्णोद्धार हेतु दान, श्रमण–संस्कृति की सुरक्षा व संवर्द्धन हेतु दान, मुनि संघों की तीर्थ–यात्रा हेतु दान, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा व पूजा विधान एवं धर्म प्रभावना के अन्य कार्य हेतु दान, जिनवाणी का प्रचार–प्रसार, सम्यग्ज्ञान पाठशाला धर्म–संस्कार शिविर हेतु भी दान देना चाहिए।

जिज्ञासा 7. उपरोक्त चारों प्रकार के दानों की परिभाषा बताने की कृपा करें।

समाधान:

1. **आहार दान –** सत्पात्रों को उनकी साधना वृद्धि के लिए, गृह कार्यों में उपार्जित पाप कर्मों का क्षय करने के लिए, सातिशय पुण्य वृद्धि के लिए संयम, तप, आत्म विशुद्धि, स्वाध्याय में वृद्धि करने वाला, संक्लेशता व प्रमाद का अपहरण करने वाला, शुद्ध, मर्यादित, प्रासुक, निर्दोष आहार (भोजन) नवधा भक्ति पूर्वक देना ही आहारदान कहलाता है।

2. **औषधि दान –** स्वास्थ्य की प्रतिकूलता होने पर शुद्ध, योग्य मर्यादित औषधि ा नवधा भक्ति पूर्वक देना, जिससे वे उत्तम आरोग्यता को प्राप्त करके निर्दोष साधना एवं संयम का पालन करते हुए लक्ष्य को प्राप्त कर सकें, यही औषधि दान कहलाता है।

3. **ज्ञान/शास्त्र दान –** सत्पात्रों को उनके सम्यग्ज्ञान की वृद्धि हेतु, स्व–पर के ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम व क्षय करने के निमित्त से सच्चे शास्त्रों को श्रद्धा–भक्ति पूर्वक भेंट करना शास्त्र/ज्ञान दान कहलाता है। इसके साथ ही आर्ष परम्परा के पोषक, दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा लिखित शास्त्रों का जन–कल्याण हेतु प्रकाशन कराना भी ज्ञान/शास्त्र दान के अन्तर्गत आता है।

4. **अभय दान –** प्राणी मात्र के प्रति प्राण रक्षा का भाव रखना, दीन दुखी जीवों को देखकर दया करना, करुणापूर्वक आवश्यक दान देना, सत्पात्रों को ठहरने हेतु स्थान

देना एवं साधना में बाधक हेतुओं को दूर करना आदि अभयदान में ही सम्मिलित हैं।

जिज्ञासा 8. उपरोक्त चारों प्रकार के दानों में कौन–कौन प्राणी प्रसिद्ध हुए? उनके नाम व तत्सम्बन्धी कथा बताने की कृपा करें।

समाधान: चारों प्रकार के दानों में क्रमशः –

1. **आहार दान में प्रसिद्ध–** श्रीषेण, वज्रजंघ, श्रीमति, शक्तिसेन, सुकेतु सेठ, आरम्भक ब्राह्मण पुत्र, वसुदेव ब्राह्मण, सुदेव ब्राह्मण, राजा धारण, भामण्डल, यक्षिला, देवसेना की पुत्री यक्षदेवी, रूद्रदन्त की पत्नी विनय श्री, आनन्द श्रेष्ठी की पत्नी नंदा, अपराजित राजा की पुत्री विनय श्री, सोमशर्मा पुरोहित की स्त्री अग्निला, राजा श्रेयांस, चंदन बाला इत्यादि अनेकों महानुभाव प्रसिद्ध हुए।

आहार दान की अनुमोदना में– अकृतपुण्य, व्याघ्र, शूकर, वानर, नेवला, कबूतर, कबूतरी, (कबूतर युगल जो हिरण्यवर्मा व प्रभावती हुए सेनापति, मंत्री, पुरोहित, सेठ, जटायु, गिद्ध, शेर इत्यादि)

2. **औषधि दान में प्रसिद्ध–** सेठ पुत्री वृषभसेना, श्रीकृष्ण (नवमें नारायण), मुनिराज, जीवक वैद्य।

3. **शास्त्र दान में प्रसिद्ध–** कोण्डेश ग्वाला,

4. **अभय दान या वसतिका दान में–** शूकर, राजा शिवि, सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध), हंस।

(इनकी कथाऐं लेखक की अन्य कृति ''दान के अचिन्त्य प्रभाव'' में देखें)

जिज्ञासा 9. आहारादि दान का फल दान देने से ही प्राप्त होता है अथवा अन्य भी किसी प्रकार से संभव है? बताने की कृपा करें।

समाधान: आहारादि दान का फल कृत, कारित, अनुमोदना से प्राप्त होता है। अर्थात् स्वयं दान देना, दूसरों से दिलवाना एवं देने वाले की अनुशंसा करने से भी दान का फल प्राप्त होता है।

जिज्ञासा 10. क्या सभी व्यक्ति दान देने के योग्य होते हैं? अथवा उनमें कुछ विशेषता है? बतलाने के कृपा करें।

समाधान: उत्तम दाता जो दाता के सर्वगुणों से सहित है, दान देने का अधिकारी है, असमर्थ अवस्था में दूसरों से दिलवाये तथा परोक्ष में, अशक्यता में, अनुमोदना या अनुशंसा करें।

जिज्ञासा 11. दाता किसे कहते हैं?

समाधान: न्यायोपार्जित धन के माध्यम से सत्पात्रों को स्वपर कल्याण की दृष्टि

से दाता के योग्य सभी गुणों से युक्त (7 गुण + 5 भूषण + 21 विशेष गुण + विशेष अर्हताओं/योग्यताओं से युक्त) एवं दूषणादि से रहित होकर श्रद्धा भक्ति पूर्वक देय वस्तु को धर्म वृद्धि हेतु देने वाला योग्य पुरुष ही दाता होता है।

जिज्ञासा 12. दाता के सामान्यतया कितने भेद हैं और कौन–कौन से? समझाने की कृपा करें।

समाधान: दाता के सामान्यतया तीन भेद हैं :

1. उत्तम 2. मध्यम 3. जघन्य

1. उत्तम दाता – दाता के सम्पूर्ण गुणों से युक्त, अणुव्रत एवं शील–व्रतों से सुशोभित, दूषणों व अतिचारों से रहित, दान देने के समय याद रखने योग्य बातों का ज्ञाता, स्थिर चित्त वाला, अत्यन्त भद्र परिणामों से युक्त, प्रसन्न हृदय एवं उदारमना श्रावक उत्तम दाता होता है।

2. मध्यम दाता – दाता के सम्पूर्ण गुणों से युक्त, सर्व दोषों व अतिचारों से रहित, विवेकी श्रावक मध्यम दाता होता है। यह अणुव्रतों का अभ्यासी होता है।

3. जघन्य दाता – अविरत सम्यक् दृष्टि, यथाशक्य दाता के गुणों आदि से युक्त, दोषातिचार से रहित दाता जघन्य या सामान्य दाता कहलाता है।

जिज्ञासा 13. देय वस्तु किसे कहते हैं?

समाधान: सावद्य रहित, संयम की वृद्धि कर, संक्लेशता के कारणों से रहित, विशुद्ध परिणामों की जनक, प्रमाद विनाशक, उत्साह वर्धक, धर्म–ध्यान के अनुकूल जो दाता एवं पात्र आदि दोनों के लिए परम्परा से मोक्ष का हेतु बने, वही आहारादि द्रव्य दान–देय (दान के देने के योग्य) वस्तु कहलाती है।

जिज्ञासा 14. दाता के सात गुण (जो अनिवार्य गुण हैं) कौन–कौन से हैं? नाम बताने की कृपा करें।

समाधान: दाता के सात अनिवार्य गुण इस प्रकार हैं :

1. श्रद्धा, 2. भक्ति, 3. तुष्टि, 4. अलुब्धता, 5. विवेक/विज्ञान, 6. क्षमा, 7. सत्व।

जिज्ञासा 15. दाता के उक्त सात अनिवार्य गुणों का स्वरूप संक्षेप में बताने की कृपा करें।

समाधान:

1. श्रद्धा – सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, सच्चे धर्म, सच्चे गुरु एवं सत्पात्रों के प्रति, दान तथा दान के फल के प्रति अंतरंग मे दृढ़ विश्वास होना ही दाता का श्रद्धा नाम का गुण है। वह श्रद्धावान दाता किसी के बहकाने में आकर सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, सच्चे

गुरु, सच्चे धर्म के प्रति अश्रद्धा का भाव नहीं करता और न ही वह कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु, कुधर्म, कुपात्र, कुदान या कुतत्व आदि के प्रति श्रद्धा ही करता है। परमार्थ के प्रति अटल श्रद्धान ही दाता का श्रद्धा नामक गुण है।

2. भक्ति– पूज्य पुरुषों के गुणों मे आंतरिक अनुराग के साथ गुणोत्कीर्तन करना ही भक्ति है। भक्ति वह मार्ग है, जिसके माध्यम से सच्चाभक्त, भगवान भी बन जाता है। बिना भक्ति के दिया गया दान, दान के सम्पूर्ण फल को देने में असमर्थ है। दाता सत्पात्रों को दान देते समय नवधा भक्ति का विशेष ध्यान रखता है। भक्ति–रहित दिये हुए आहारादि दान को सत्पात्र स्वीकार भी नहीं करते। तथा नवधा भक्ति–रहित दान की पूर्ण सार्थकता भी नहीं है। अतएव नवधा भक्ति का कथन विस्तार से आगे करेंगे।

3. तुष्टि – तुष्टि दाता का तीसरा प्रमुख गुण है। तुष्टि का अर्थ है – तोष, संतोष, संतुष्टि इत्यादि। दाता को यथालब्ध पात्रों को पाकर संतुष्ट हो जाना चाहिए। अपने परिणामों को संक्लेशित नहीं करना चाहिए। जैसे कि किसी श्रावक के यहाँ उत्तम पात्र का आहार नहीं हुआ, मध्यम व जघन्य पात्र ही आये तो उन्हें प्राप्त करके भी हर्षित हो परम विशुद्धि के साथ आहारादि दें। यह न सोचे कि मेरे घर बड़े महाराज क्यों नहीं आये?, तीर्थंकर क्यों नहीं आये? ऋद्धिधारी मुनि क्यों नहीं आये? अथवा आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठी क्यों नहीं आये? उनके यहाँ क्यों चले गये? मेरे यहाँ तो जघन्य पात्र ही आये हैं। ऐसा सोच कर अशुभ/अप्रशस्त परिणाम न करें अपितु संतोष धारण करें तथा यह विचार करें कि मेरा हीन पुण्य है अतः उत्तमोत्तम, उत्तम–मध्यम, उत्तम–जघन्य आदि पात्रों को लाभ नहीं हुआ, अब मुझे अपने परिणाम विशुद्ध कर सातिशय पुण्य का अर्जन करना चाहिए, जिससे कालान्तर में मुझे उत्तम पात्रों का लाभ मिल सके।

4. अलुब्धता – प्रमुख गुणों में दाता का चौथा गुण है – अलुब्धता। इसका अर्थ है, लुब्धता का अभाव। अर्थात् कंजूसी, कृपणता या तीव्र लोभ–लालच के परिणामों का परित्याग करना। सत्पात्रों को प्राप्त करके कभी दान देने में लोभ नहीं करना चाहिए लोभ के परिणामों के साथ दान देने से भी दान के समुचित फल की प्राप्ति नहीं हो पाती, अपितु अति लोभ परिणामों के कारण सत्पात्रों को भोजन कराने से या दुर्भाव के साथ भोजन कराने से पुण्य की क्षीणता व पापों की वृद्धि होती है। दाता को चाहिए कि वह शक्ति के अनुसार अवश्य आहारादि दान देने में प्रवृत्त हो। यदि एक रोटी ही हो तो भी ऐसे भाव रक्खें कि आधी रोटी का सत्पात्रों को दान देकर व आधी रोटी से अपनी क्षुधा शमन कर लूँ। अलुब्धता का अर्थ यह भी नहीं कि शक्ति से अधिक खर्च कर दिया जाए क्योंकि शक्ति से अधिक खर्च कर देने से भी दाता के परिणामों में संक्लेशता पैदा हो जाती है अतः शक्ति के अनुसार ही दान दें।

5. विवेक/विज्ञान– समीचीन दाता का प्रमुख पांचवा गुण है, विवेक/विज्ञान। विवेक का अर्थ है – आहारादि दान देते समय दाता विवेक पूर्वक कार्य करे, क्योंकि बिना विवेक के की गई समीचीन क्रिया भी पाप बन्ध में हेतु बन जाती है। विवेक पूर्वक किया गया लघु कार्य भी प्रशंसनीय, महत्वपूर्ण, आशातीत सफलता प्रदान करने वाला होता है। आहारादि दान देते समय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखना व उसके बारे में समीचीन विचार करना कि इस वस्तु का दान उचित है अथवा अनुचित? दान किस वस्तु का करना चाहिए? विवक्षित पात्र/साधक की अवस्था, प्रकृति, स्वास्थ्य आदि की अपेक्षा, मौसम की अपेक्षा, तप–त्याग, संयम साधना की अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए विवेक पूर्वक आहारादि दें। उस समय अविवेक के साथ आहारादि देकर अपनी मूर्खता प्रकट न करें तथा साधक की साधना में बाधक न बनें विवेकी दाता शीत काल में उष्ण पदार्थ व ग्रीष्म काल में शीतल पदार्थों को अधिक प्रयोग करते हैं।

दूध के ऊपर से खट्टी वस्तुएं (नीबू, आम की खटई आदि) न दें। रस या फलों के तुरन्त बाद पानी न दें। ग्रीष्म काल में पेय पदार्थ अधिक दें। वर्षाकाल में गरिष्ठ भोजन न दें इत्यादि बहुत सी बातें यह विवेकी दाता ध्यान में रखता है।

(कहाँ–कहाँ किस प्रकार विवेक रखें, इसके बारे में आगे विस्तार से बतायेंगे)

6. क्षमा – क्षमा दाता के प्रमुख गुणों में छंठवा गुण है। इसका अर्थ है, क्रोधादि परिणामों का परित्याग कर देना। आहारादि दान देते समय दाता को परम क्षमा भाव ध ारण करना चाहिए। कदाचित् प्रतिकूलताएं भी सामने उपस्थित हो जाऐं, यदि क्रोधोत्पत्ति के निमित्त भी मिल जाऐं फिर भी क्षमा भाव धारण करना चाहिए। यदि कोई तुम्हें दुर्वचन कह रहा है तब भी आप क्षमाशील ही बन कर रहें। क्रोध रूपी अग्नि गुण रूपी रत्नों को जला कर ध्वस्त कर देती है, मन, वचन, काय की शुद्धि भी नहीं रह पाती और किसी भी प्रकार की अशुद्धि में दिया गया आहारादि दान पुण्यबन्ध के स्थान पर प्रायः पाप बन्ध का हेतु बन कर रह जाता है। अतः दाता का क्षमा गुण से युक्त होना भी अनिवार्य है।

7. सत्व – दाता के प्रमुख गुणों में सातवें व अन्तिम गुण का नाम सत्व है। सत्व का अर्थ होता है – कोमल परिणाम, करुणा, दया, अहिंसा, मृदुता, ऋजुता सहित, अहंकारादि से रहित परम विशुद्ध परिणामों का होना। आहारादि दान के समय अहंकार करने से, मायाचारी करने से, क्रोध करने से, लोभ करने से निःसन्देह दुर्गति आदि की प्राप्ति सम्भव है। अतः आहारादि दान के समय दिखावा या छलकपट आदि के परिणाम नहीं होने चाहिए।

जिज्ञासा 16. भूषण किसे कहते हैं?

समाधान: जिन्हें अंगीकार करने से व्यक्ति सुशोभित हो, भव्य जनों के मध्य शोभायमान हो, ऐसे गुणों को ही भूषण कहा गया है। भूषण व आभूषण दोनों एकार्थवाची

हैं। जिस प्रकार पुरुष या स्त्री स्वर्णाभरण/आभूषण धारण करने से सुशोभित होते हैं, उनके बिना उनका सौन्दर्य फीका ही दिखता है उसी प्रकार दाता 5 भूषणों से रहित होकर दानादि के समय सुशोभित नहीं होता, अपितु सज्जनों के मध्य हास्य का ही पात्र होता है। अतः भूषण धारण करना प्रत्येक दाता के लिए अनिवार्य है।

जिज्ञासा 17. दाता के 5 भूषण कौन–कौन से हैं? नाम बताते हुए संक्षेप में व्याख्या करने की कृपा करें।

समाधान : दाता के 5 भूषण–

1. आदर पूर्वक दान देना
2. आनन्द पूर्वक दान देना
3. मधुर वचनों के साथ दान देना
4. निर्मल भावों से दान देना
5. दान देकर अपना अहोभाग्य मानना

1. आदर पूर्वक दान देना – सत्पात्रों को श्रद्धा, शक्ति, भक्ति, विनय, समर्पण एवं विशेष सम्मान करते हुए दान देना चाहिए। यह शुभ कार्य योग है जो पुण्यास्रव, पाप–संवर, सविपाक निर्जरा, कथंचित् अविपाक निर्जरा का हेतु एवं परम्परा से मोक्ष का कारण है।

2. आनन्द पूर्वक दान देना – सत्पात्रों को दान आनन्द के साथ देना चाहिए। मन में शोक, भय, जुगुप्सा, उदासीनता, क्रोध, मान, छलकपट, लोभ–जन्य परिणाम न हों। आहार दान हर्षित मन से, पुलकित तन से, मधुर–वचनों के साथ ही देना चाहिए।

3. मधुर वचनों के साथ दान देना – दाता सत्पात्रों को दान देते समय माँ के समान वात्सल्य, सच्चे भक्त की तरह श्रद्धा, भक्ति, समर्पण से अभिप्रेरित होता हुआ मिष्ट वचनों को बोलता हुआ दान दे। मधुर वचन भी परमौषधि के समान आरोग्यवर्द्धक, विशुद्धि में वृद्धिकारक व संक्लेशता के हारक होते हैं।

4. निर्मल भावों से दान देना – सत्पात्रों को आहारादि देते समय दाता के परिणाम अत्यन्त विशुद्ध हों। उस समय परिणामों में संक्लेशता, संकीर्णता, वैमनस्यता का समावेश न हो। कषायोद्रेक, विषयाशक्ति, पीड़ा, भौतिक पदार्थों की आकांक्षा, आर्त्त –रौद्र ध्यान जनित परिणाम, कुराग द्वेष व तीव्र मोह जन्य परिणाम नहीं होने चाहिए।

5. दान देकर अपना अहोभाग्य मानना – आज मेरा धन, तन, वचन, मन और समूचा जीवन ही धन्य हो गया। आज की ये घड़ी, ये दिन ही नहीं पूरा जीवन

पावन हुआ। यह क्षेत्र, काल, द्रव्य, भाव भी परम पवित्र हुए। आज मेरा अहोभाग्य है जो कि दिगम्बर, परम वीतरागी निर्ग्रन्थ महातपस्वी, अर्हन्त रूप धारक, कलि काल के चलते फिरते भगवन्तों के पावन चरण–कमल मेरी कुटिया में पड़े। धन्य है इन पृथ्वी के देवताओं के लिए, जिनसे सम्पूर्ण वसुन्धरा बन्धन से, दुखों से, कर्मों से मुक्ति का मार्ग सीख सकती है। यह सौभाग्य सौधर्म इन्द्र आदि देवों के लिए दुर्लभतम है (असम्भव है) वह सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। मेरा घर जो कि आज तक (जब तक दिगम्बर संतों के चरण न पड़े तब तक) श्मशान या नरक के समान था लेकिन अब मानो वह स्वर्ग के समान आनंद देने लगा है, अमृत वृष्टि करने वाला है इत्यादि प्रकार से अपने भाग्य की सराहना करनी चाहिए।

जिज्ञासा 18. दाता के 21 विशेष गुण कौन–कौन से हैं? नाम बताने की कृपा करें।

समाधान: दाता के 21 गुण (जो कि विशेष गुण हैं) वे इस प्रकार हैं –

1.	धर्मानुरागी	1.	लज्जावंत
2.	पाप भीरू	2.	दयावंत
3.	धैर्यवान	3.	प्रसन्नता
4.	शीलवान	4.	प्रतीतिवंत
5.	लज्जावान	5.	परदोषाच्छादन
6.	संकल्प का धनी	6.	परोपकारी
7.	लोक प्रिय	7.	सौम्यदृष्टि
8.	कृतज्ञ	8.	गुणग्राही
9.	त्याग शील	9.	दीर्घ विचारी
10.	सत्यवादी	10.	दानवंत
11.	संवेगी	11.	शीलवंत
12.	वैरागी	12.	कृतज्ञता
13.	वात्सल्य से परिपूर्ण हृदय	13.	तत्वज्ञ
14.	धर्म प्रभावनेच्छुक	14.	धर्मज्ञ
15.	स्वपर कल्याणार्थी	15.	मिथ्यात्वरहित
16.	सद्बोध धारक	16.	संतोषवंत
17.	संयमोन्मुख	17.	स्याद्वाद भाषी

18. संतोषी	18. मिष्टभाषी
19. उदार हृदय	19. अभक्ष्य त्यागी
20. सहनशील सरल हृदय	20. षट्कर्म प्रवीण
21. दयालु	21. दूरदर्शित

जिज्ञासा 19. इन गुणों की संक्षेप मे व्याख्या कर दें तो अति कृपा होगी।

समाधान :

1. **धर्मानुरागी** – अहिंसा प्रधान, प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ, विश्व में श्रेष्ठ, जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित, जैन धर्म (सनातन धर्म) में श्रद्धा के साथ अनुराग/प्रीति करना धर्मानुरागी नाम का गुण है।

2. **पाप भीरू** – संसार वर्धक दुखों के हेतु, पापों से भयभीत रहने वाला दाता उत्तम दाता है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इत्यादि पापों से भयभीत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, रत्नत्रय आदि में दृढ़ प्रीतिवान/आसक्तवान दाता उत्तम गुणों से संयुक्त होता है।

3. **धैर्यवान** – उत्कृष्ट दाता वही है जो आकस्मिक उत्पन्न हुई किन्हीं भी प्रतिकूलताओं अथवा अनुकूलताओं को प्राप्त करके अधीर न हो। सत्य की रक्षा के लिए या किये गये कार्य का परिणाम देखने हेतु धैर्य धारण करे, क्योंकि अच्छे कार्य का फल अच्छा एवं बुरे कार्य का फल बुरा ही मिलता है, ऐसा विश्वास सदैव हृदय में धारण करे।

4. **शीलवान** – दाता को शीलवान होना चाहिए। स्वकीय पत्नी को छोड़कर शेष स्त्रियों को माता, बहिन या पुत्रीवत् माने। (समवय वाली स्त्रियों को भगिनीवत्, अपनी उम्र से अधिक उम्र वाली स्त्रियों को माँ के समान एवं कम उम्र वाली स्त्रियों को दुहिता के समान मानने वाला हो।) अथवा गुणव्रत एवं शिक्षाव्रत का अभ्यासी हो। स्त्रियों के लिए भी समान वय वालों को सहोदर के समान, अधिक वय वालों को जनक/पिता के समान, एवं कम वय वालों को सुपुत्र समान ही मानना चाहिए।

5. **लज्जावान** – दाता को शर्मीला नहीं लज्जावान/मान मर्यादा की रक्षा करने वाला होना चाहिए। अपनी प्रशंसा सुनने में संकोची तथा दूसरों के द्वारा निजार्थ उपकार से कृतज्ञ या लज्जाशील होना चाहिए।

6. **संकल्प का धनी** – उत्तम दाता को संकल्प का धनी होना चाहिए। संकल्प की दृढ़ता से सफलता भी अवश्य ही प्राप्त होती है। जिसके संकल्प क्षण–क्षण में बदलते रहते हैं ऐसे दाता जीवन में प्रायः असफल ही रहते हैं। धर्म कार्य में लिया गया कोई भी संकल्प, व्रत, पूजा, दान शीघ्र पूर्ण कर लें। नियम तोड़े नहीं भले प्राण चले जाएं। दान बोलकर

उसे शीघ्र चुका देना चाहिए। उसे अपने घर में न रखें अन्यथा निर्माल्य सेवन के समान ही दोष लगता है। यद्यपि आगम में बोली लगाने की परम्परा नहीं तुरन्त दान देने का ही विधान है, फिर भी कहीं आपने दान बोला है तो उसे तुरन्त ही दे दें अन्यथा निर्माल्य सेवन का पाप लगेगा जो नरक गति का कारण भी हो सकता है।

7. लोकप्रिय – उत्तम दाता सभी का प्रेम पात्र होता है। सभी का प्रेम पात्र वही होता है जो उचित व्यवहारवान, स्वच्छ हृदय वाला, परोपकारी, निरभिमानी, धार्मार्थी, साधर्मी के प्रति वात्सल्य से युक्त हो। जो दाता लोक निंद्य होता है उसे उत्तम दाता नहीं कहा जा सकता है।

8. कृतज्ञ – उपकारी के उपकार को न भूलने वाले व्यक्ति कृतज्ञ कहलाते हैं, जो उपकारी के उपकार को भूल जाते हैं वे कृतघ्न होते हैं। उत्तम दाता वही है जो दूसरों के द्वारा अपने प्रति किये गये लघु उपकार को भी सदैव याद रखे एवं स्वयं के द्वारा दूसरों के लिये किये गये बड़े से बड़े उपकार को भी भूल जाए। दूसरों के द्वारा अपने लिए किये गये उपकार का बदला भी सदैव उपकार रूप में चुकाने के लिए तत्पर रहे। यदि सक्षम न हो तो भी उपकार की ही भावना भानी चाहिए।

9. त्यागशील – उत्तम दाता का त्याग सामयिक गुण होना चाहिए। सदैव त्याग के कार्यों में अग्रसर रहे, गुणों के प्रति आसक्त, दोषों के प्रति त्यागशील, धर्म कार्यों के लिए अपना न्यायोपार्जित धन, तन, मन सब कुछ त्याग करने में अग्रणी रहे।

10. सत्यवादी – उत्तम दाता वही है जो सत्य का पोषक, असत्य का खण्डन करने वाला हो, उसे सत्य के लिए कितना भी संघर्षों का सामना करना पड़े किन्तु वह सत्य का ही पक्ष ले। क्योंकि सत्य, शाश्वत एवं नित्य है और शाश्वत अवस्था को प्रदान करने वाला है। असत्य क्षण भर के लिए सुखाभास का कारण हो सकता है किन्तु कालान्तर में चिरकाल तक दुर्दान्त दुःख देने वाला है। सत्यवादी दाता ही सबका विश्वासपात्र हो सकता है।

11. संवेगवान – धर्म, धर्मात्मा, धर्म के फलों को देखकर हर्षित होना संवेग भावना है, उत्तम दाता वही है जो धर्म को पाकर या दूसरों को धर्म करते देखकर प्रसन्न हो जाए, धर्म के फल को प्राप्त करता हुआ देखकर आनन्द को प्राप्त हो, धार्मिक कार्यों में भाग लेने पर उसे हार्दिक आह्लाद की प्राप्ति होती हो, आज कुछेक लोग धर्म, धर्मात्मा या धर्म के प्रति मात्सर्य, घृणा, द्वेष आदि भावों से भर जाते हैं, यह उत्तम दाता के लिए सर्वथा अनुचित है।

12. वैरागी (वैराग्यवान) – संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होना ही वैराग्य है।

संसार के स्वभाव का यथार्थ जानने वाला कि "संसार दुःखमय है, असार है, स्वार्थों से परिपूर्ण है। शरीर रोगों की खान है, क्षणध्वंसी है, पोषण करने पर भी दुःखों को देने वाला है, अपवित्र है। भोग पाप–बन्ध के हेतु हैं, संसार कूप में डुबोने वाले हैं, मन मोहक इन्द्रायण फल के समान हैं जो दूर से ही अच्छे लगते हैं किन्तु विपाक के समय हलाहल जहर के समान दुःखद हैं।" ऐसा सोच कर उत्तम दाता संसार, शरीर, भोगों से परम विरक्त होकर ही रहता है।

13. वात्सल्य से परिपूर्ण हृदय – उत्तम दाता वह है, जिसके रोम–रोम में धर्म एवं धर्मात्मा के प्रति वात्सल्य, निर्मल, निःस्वार्थ प्रेम भरा हो, जहाँ भी वह यथार्थ धर्मात्मा को देखे, उसके हृदय से वात्सल्य का झरना फूट पड़े। उसका हृदय संकीर्ण नहीं अपितु सम्पूर्ण यथार्थ धर्म को ग्रहण करने का इच्छुक हो। गाय का बछड़े के प्रति जो निःस्वार्थ स्नेह होता है उसी प्रकार का स्नेह साधर्मियों एवं साधकों के प्रति हो।

14. सद्धर्मप्रभावनेच्छुक – उत्तम दाता सदैव सत्य धर्म की प्रभावना का इच्छुक रहता है, जिनधर्म की प्रभावना होते देख वह अंतरंग में बहुत ही आनन्दित होता है। सद्धर्म प्रभावना करने में तत्परता उत्तम दाता का अनुपम गुण है। वह येन केन प्रकारेण समीचीन साधनों के माध्यम से (दान, ज्ञान, पूजा, विधान, जूलूस, महोत्सव, तीर्थंकरों के कल्याणकों को मनाकर) धर्म प्रभावना ही करता है।

15. स्वपर कल्याणार्थी – उत्तम दाता सदैव स्व–पर कल्याण में तत्पर रहता है, उसका मुख्य ध्येय लोक–ख्याति, पूजा प्रतिष्ठा या मान–सम्मान की प्राप्ति नहीं अपितु यथार्थ कल्याण की प्राप्ति है। इसलिए वह दान 'छपाकर' देने में नहीं 'छिपाकर' देने में विश्वास रखता है। अधिक धर्म के कार्यों को करके भी उसे घमण्ड नहीं आता। वह विनम्र ही रहता है क्योंकि वह जानता है कि आत्म कल्याण मान के माध्यम से नहीं अपितु समीचीन दान, ज्ञान, ध्यान के माध्यम से ही होगा।

16. सद्बोधधारक – उत्तम दाता वही होता है जो विवेकी हो, समीचीन ज्ञान का धारक हो, क्योंकि समीचीन ज्ञान के अभाव में की गई क्रिया पूर्ण रूपेण समीचीन फल को देने में असमर्थ होती है, समीचीन बोध ही सत्य से साक्षात्कार कराने में कारण है, समीचीन बोध के बिना धर्म के स्वरूप को समझ पाना भी कठिन है एवं समीचीन बोध के अभाव में वह सत्य मार्ग से भटक जाएगा अतः उत्तम दाता को सद्बोधी होना अनिवार्य है।

17. संयम सन्मुखी – उत्तम दाता वह है, जो देश संयम आदि से युक्त है अथवा संयम ग्रहण करने के सन्मुख है, संयम ग्रहण करने के प्रति लालायित है। संयम के सन्मुख दाता ही संयमी व संयम का यथार्थ रूप जानकर आंतरिक भक्ति प्रकट कर

सकता है। संयम का विरोधी, प्रतिमुखी उत्तम दाता नहीं हो सकता।

18. संतोषी – उत्तम दाता वह है जो संतोष धारण करने में समर्थ है, यदि असंतोषी होगा तो दान नहीं दे सकेगा सदैव ग्रहण करने के लिए आतुर रहेगा एवं उसकी प्रवृत्ति (कंजूसों जैसी) कृपणवत् हो जाएगी कृपण धर्म नहीं कर सकते दान नहीं दे सकते। कृपण अधिकांशतः निर्धनता को ही प्राप्त हो जाते हैं। जो श्रावक अल्प धन होने पर भी दान देता है वह उत्तम दाता है क्योंकि इच्छानुसार धन कब, किसके पास हुआ है? अतः उत्तम दाता जो कुछ है उसे संतोष धारण करते हुए सत्पात्रों को दान देने में एवं सत् कार्यों के दान देने में अग्रसर रहने की भावना से युक्त होता है।

19. उदार हृदय – उत्तम दाता वह है जो ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना से युक्त हो, उसका हृदय उदार हो, उदार हृदय वाले प्राणी ही धर्म की परिपूर्णता को प्राप्त कर सकते हैं। उदार हृदय वाला प्राणी दान देकर अपना अहोभाग्य मानता है जबकि संकीर्ण हृदय वाला प्राणी या तो दान देता ही नहीं, कदाचित् दे भी दे तो पश्चाताप करता है, उदार हृदय वाला सद्–धर्म के लिए सदैव समर्पित रहता है, संकीर्ण हृदय वाला समर्पित नहीं होता है। वह वस्तु की सम्पूर्णता नहीं अंश को ही पूर्ण मान कर बैठ जाता है।

20. सहनशील एवं सरल हृदय – उत्तम दाता समस्त प्रतिकूलताओं को भी आसानी से सहन कर लेता है। अनुकूलता में तो प्रायः सभी सहनशील रहते ही हैं किन्तु उत्तम दाता वस्तु तत्व का यथार्थ विचार करते हुए प्रतिकूलताओं को भी क्षणिक (धूप–छाया जैसे खेल) मानकर सहन कर लेता है। उसका हृदय निर्मल जल या दर्पण के समान स्वच्छ होता है, निर्मल हृदय में ही धर्म का बीज अंकुरित हो सकता है जिसका हृदय स्वच्छ नहीं है, वह स्वच्छता को नहीं पा सकता है। सहनशील व्यक्ति ही उन्नति के शिखर को प्राप्त कर सकते हैं, जिनका हृदय बालकवत् सरल होता है उनके हृदय में ही धर्म एवं परमात्मा का वास सम्भव है, कठोर हृदय वालों में नहीं।

21. दयालु – अहिंसा सम्पूर्ण धर्मों का बीज है, आधार है, चेतना है, बिना अहिंसा के धर्म मुर्दे के समान है। अहिंसा, करुणा, दया, अनुकंपा, रहम आदि शब्द कथंचित् एकार्थवाची हैं। जो दाता दया से रहित है, वह सर्वस्व त्यागी भी हो जाए फिर भी धर्मात्मा नहीं हो सकता। समीचीन दाता वही हो सकता है जिसके हृदय में दया परिपूर्ण हो, वह दूसरों को दुखी देखकर द्रवीभूत हो जाए, जिसका हृदय नवनीत के समान मृदु हो अर्थात् दयालुता भी उत्तम दाता का अभिन्न गुण है इसके बिना धर्म ढोंग ही कहलाएगा।

जिज्ञासा 20. दाता की विशेष योग्यताएं जो आहारादि दान में अनिवार्य होती हैं? उन्हें बताने की कृपा करें।

समाधान: दाता को शुद्धियों का ध्यान रखना, दूषण, अतिचार व उत्पादन आदि

दोषों से रहित होना चाहिए। अष्ट मूलगुण का धारक, सच्चे देव शास्त्र गुरु व जिन धर्मोपासक, सप्त व्यसनादि से रहित जिनागमानुसार श्रावकोचित आचरण से युक्त हो तभी वह आहारादि दान देने का अधिकारी हो सकता है।

जिज्ञासा 21. आपने शुद्धियों के बारे में कहा, वे शुद्धियां कितनी व कौन–कौन सी होती हैं? समझाने की कृपा करें।

समाधान: अशुद्धियों का न होना एवं विशेष शुद्धि से युक्त अवस्था ही शुद्धि की अवस्था है। वे शुद्धियां इस प्रकार हैं :

1. **कुल शुद्धि** – दाता विजातीय विवाह (स्वयं जैन होते हुए अन्य जाति वाले ब्राह्मण, शूद्र, मुस्लिम, सिंधी इत्यादि से विवाह करने वाला या उनसे उत्पन्न संतान हो) अन्तर्जातीय विवाह (जैन होते हुए अन्य जैनों से शादी करने वाला जैसे स्वयं परवार है तो वह परवार में, गोलापूर्व है तो गोलापूर्व, में ही विवाह करे, यदि वह परवार होते हुए जैसवाल या खण्डेलवाल से शादी करता है तो वह विवाह अन्तर्जातीय विवाह कहलाता है। उसे सजातीय विवाह ही करना चाहिए। ऐसी सामाजिक व्यवस्था है एवं कुछ आचार्य मनीषिओं का उपदेश है। विधवा विवाह (विधवा से विवाह करने वाला या उनसे उत्पन्न संतान) अवैध विवाह (जिसे समाज दोषी मानता है, जो लोक–व्यवहार के प्रतिकूल चोरी से किसी को अपनी पत्नी बना लेना या उनसे उत्पन्न संतान भी दोषी है।) परांगना से व्यवहार रखने वाला या उनसे उत्पन्न संतान हो जिसे लौहरी सेन, विनैकाबार, या दस्साचार कहा जाता है एवं उस कुल में कुल को कलंकित करने वाला कोई कार्य नहीं हुआ हो, वही दाता उत्तम दाता कहलाने के योग्य है। सामाजिक व्यवस्था, लोक व्यवहार, आगम परम्परा व आचार्य मनीषिओं की आज्ञा–उल्लंघन करना भी श्रावक के लिए उचित नहीं है।

2. **काय शुद्धि** – दाता हीनाधिक आंगोपांग से रहित हो। कुष्ठ रोग, बवासीर, भगंदर, टी.वी. (क्षय रोग), तीव्र जुकाम, खांसी, ज्वर, मृगी अथवा अन्य असाध्य रोगों से रहित हो। अंधा, बहरा, काना, लंगड़ा, लूला आदि न हो। उसे चर्बी युक्त साबुन से स्नान भी नहीं करना चाहिए। चर्बी युक्त क्रीम, लिपस्टिक, नेल पॉलिश, सेन्ट आदि भी लगा कर न आया हो। नाखून आदि भी बड़े–बड़े न हो। उत्तम हो कि आहार दान के समय गंदगी से परिपूर्ण मुद्रिका भी न पहने इत्यादि बातों को उत्तम श्रावक/दाता को ध्यान में रखना चाहिए।

3. **वसन (वस्त्र) शुद्धि** – आहार के समय बहु हिंसा जन्य रेशम आदि के वस्त्र एवं टेरीकॉट, टेरालीन, बूली, सिलकन, मखमल, ऊनी, चर्म युक्त, पत्तों या बल्कल

आदि के वस्त्र न पहनें। वस्त्र कोरे, फटे, गंदे, काले, अति लम्बे चौड़े, अति चुस्त, अनफिट, जालीदार, चटक–मटक वाले न हों। जो वस्त्र विशुद्धि का ह्रास करने वाले हैं, जिसमें आंगोपांग दृष्टिगोचर हों ऐसी लोक–विरुद्ध पाश्चात्य वेशभूषा न हो। पुरुषों के लिए धोती–दुपट्टा (अधोवस्त्र–उत्तरीय परिधान) एवं अन्दर के वस्त्र भी अनिवार्य हैं तथा महिला वर्ग के लिए भारतीय संस्कृति के अनुसार साड़ी एवं अन्दर के वस्त्र भी अनिवार्य हैं। वस्त्र शुद्धि के समय सभी वस्त्रों की शुद्धि अनिवार्य है। यदि एक वस्त्र भी अशुद्ध है तो सभी वस्त्र अशुद्ध ही कहलायेंगे, अतः वस्त्रों की पूर्ण शुद्धि होना चाहिए। हाथ से न छुएं, अशुद्ध व्यक्ति या वस्तु से भूल से भी स्पर्श न हो इसलिए अशुद्धि के कारणों से दूर/सावधान रहें।

4. असन (आहार) शुद्धि– आहार शुद्ध, मर्यादित, प्रासुक, साधना में वृद्धि करने वाला सात्विक हो। जो आहार तामसिक या राजसिक है, वह भी साधुओं के लिए सर्वथा योग्य नहीं है, कथंचित् ग्राह्य हो सकता है। जो आहार प्रमाद पैदा करने वाला हो, गरिष्ठ हो, वासना को जाग्रत करने वाला, इन्द्रियों को उद्दीप्त करने वाला, लोक मर्यादा के विरुद्ध, ब्रह्मचर्य का बाधक, स्वाध्याय, तप, ध्यान व संयम–साधना में ह्रास करने वाला हो तो वह आहार भी साधुओं को नहीं देना चाहिए। अति पक्व, कच्चा, जला हुआ, अधकच्चा, बदबूदार, ग्लानि युक्त, काले–काले धब्बों से युक्त, रक्त या अतिकृष्ण वर्ण का, जिसे देखकर अन्य संदेह पैदा हो रहा हो, जिसका शोधन करना कठिन है ऐसा आहार देना भी योग्य नहीं है। द्विदल युक्त, प्रासुकाप्रासुक मिश्र आहार, मौसम व प्रकृति के प्रतिकूल आहार भी नहीं देना चाहिए। घी, दूध, तेल, दही, छांछ, जल, बूरा, गुड़, मसाले, दाल, आटा, पकवान आगे कही मर्यादानुसार शुद्ध होना चाहिए किन्तु कभी अशुद्ध देने का प्रयास न करें, इससे पुण्य के स्थान पर पाप का ही बंध होता है।

(पदार्थों की मर्यादा का कथन आगे दिया है, वहाँ देखें)

5. वचन शुद्धि – दाता को आहारादि दान देते समय हितकर, सीमित, मिष्ट एवं आगमानुसार ही वचन बोलना चाहिए। लोकव्यवहार के विरुद्ध शब्द न बोलें। कर्कश भाषा (संताप उत्पन्न करने वाली भाषा जैसे – तू मूर्ख है, पागल है, क्रोधी है, घमंडी है, इत्यादि शब्द) कटुक भाषा (दूसरों को उद्वेग पैदा करने वाली कड़वी भाषा जैसे – तू जाति हीन है, पापी है, अधर्मी है, नीच है, दुष्ट है, पाखण्डी है, ढ़ोंगी है इत्यादि शब्द) कठोर वाणी (जो मर्म–भेदी है, जिससे प्राणी का हृदय छलनी हो जाता है जैसे – तू दोषी है, व्यसनी है, तू नरक जाएगा, तेरे कीड़े पड़ेंगे इत्यादि) निष्ठुर भाषा (जो निर्दयता से युक्त हो वह निष्ठुर भाषा है जैसे – मैं तुझे जान से मार दूंगा, मैं तेरा सिर काट दूंगा, तेरी बोटी–बोटी कर दूंगा, तेरा मार–मार कर हलुवा बनाऊंगा इत्यादि) दूसरों के क्रोध को

पैदा करने वाली भाषा (जिससे स्वयं को व दूसरों को क्रोध पैदा हो जैसे– तेरा दान देना व्यर्थ है, तू कब से त्यागी–भक्त बन गया, नौ–नौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली इत्यादि) मध्यंकृश भाषा (जो हड्डियों के मध्य भाग को भी भेद दे अर्थात् जो जीवन भर याद रहे, ऐसे अति निंद्य शब्द जिनको वह कभी भुला न सके) अतिमाननी भाषा (अपने अहंकार, घमण्ड व मान का पोषण करने वाली व दूसरों का तिरस्कार करने वाली भाषा जैसे– मेरा चौका कभी खाली नहीं जाता, मुझ जैसा दानी पूरे नगर में नहीं है, मेरे यहाँ जैसा आहार कहीं नहीं बनता, मेरे यहाँ सभी साधुओं का आहार हो गया, तुम जैसों के थोड़े ही हो सकता है इत्यादि) अनयकारी भाषा (जो भाषा परस्पर में विद्वेष पैदा करने वाली ममता, प्रेम, वात्सल्य को तोड़ने वाली हो, छलकपट, धोखाधड़ी से युक्त भाषा जैसे– अरे! उसके बारे में मत पूछो, उसके कुकर्म कह नहीं सकता, इसने उसका विश्वास कर लिया, उस जैसा ठगिया तो कोई है ही नहीं इत्यादि) छेदनकारी भाषा (जो भाषा गुणों का छेदन करने वाली है, कांटे की तरह हृदय में चुभ जाती है वह छेदनकारी भाषा है जैसे– निर्दोष पर दोषारोपण करना, जैसे महाराज श्री ! यह शराब पीता है, यह व्यभिचारी है, इसने होटल पर अभक्ष्य पदार्थ का सेवन किया था इत्यादि) जीवों का वध करने वाली भाषा (जीवों का वध करने वाली भाषा भी प्रयोग नहीं करनी चाहिए, जैसे– इसे मारो, मर गया, मर जाने दो, इसे काट दो, एक थप्पड़ मारूंगा, तुम जानते हो मुझे। अभी तुम्हें देख लूंगा, मर जा यहाँ से, मर गये बदमाश कहीं का इत्यादि) उक्त भाषा विवेकी जनों को भूलकर भी प्रयोग नहीं करनी चाहिए। ऐसी भाषा प्रयोग करने से वचन की शुद्धि नहीं कही जा सकती तथा मुनिराज ऐसे वचनों को सुनकर अन्तराय भी कर सकते हैं। अतः विवेकी आदर्शवान दाता को कम से कम बोलना चाहिए वह भक्ति, वात्सल्य, प्रेम, श्रद्धा, समर्पण से सने हुए/मिश्रित मधुर, हितकर आगमानुसार शब्द ही हों अथवा जो दूसरों को धर्म के प्रति श्रद्धा जाग्रत करने में सक्षम हो ऐसे शब्द ही प्रयोग करना चाहिए।

6. मन शुद्धि – मन में अत्यन्त विशुद्ध परिणाम हो, परम आह्लाद की अनुभूति हो, प्रमुदित मन हो एवं धर्म ध्यान से संयुक्त हो, श्रद्धा, समर्पण, भक्ति से मन इतना परिपूर्ण हो कि वह वचन व तन में भी प्रकट दिखायी दे। मन में आर्तध्यान (इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, वेदना भोगों की आकांक्षा), रौद्र ध्यान (हिंसा में आनन्द मानना, असत्य में आनन्द मानना, चोरी में आनन्द मानना, परिग्रह के संचय में आनन्द मानना) व कषाय के परिणाम न हों, आहार, भय, मैथुन, परिग्रह आदि संज्ञाएं जागृत न हों, मन पंचेन्द्रियों के विषयों, वासनाओं से परे रहे, सावद्य युक्त आरम्भ–परिग्रह में भी मन की गति न हो। इस प्रकार की मन शुद्धि युक्त दाता ही उत्तम दाता कहलाता है।

7. धन (द्रव्य) शुद्धि – जिस द्रव्य का उपयोग आहारादि दान में किया जा रहा हो वह धन अन्यायोपार्जित न हो। यदि वह धन अन्याय, अनीति, अत्याचार, जीव–वध करके अण्ड़े, माँस, शराब, चमड़ा, चर्बी युक्त वस्तुओं के क्रय–विक्रय से कमाया है तो आहारादि दान के योग्य नहीं है। क्योंकि ऐसा धन पात्र (साधकों) के लिए विशुद्धि कारक नहीं बन सकेगा तथा जो धन बहु हिंसा के व्यापारों से (आतिशबाजी का काम, बन्दूक, तलवार, चाकू, फरसा, जीव–वध के उपकरणों से, आटा चक्की, तेल–मिल, हलवाई, रंगरेज, मछुआरे आदि जैसा निकृष्ट काम करने से कमाया है तो वह भी आहारादि दान में देना उचित नहीं है। विवेकी एवं आदर्शवान दाता रिश्वत/घूंस, इन्कमटैक्स, सेलटैक्स, वैल्थटैक्स इत्यादि टैक्सों की चोरी का, दबाव के कारण अधिक ब्याज (जो लोक–व्यवहार के भी सर्वथा विरुद्ध है उस) के द्रव्य का भी प्रयोग नहीं करता है।

8. स्वजन परिजन (सूतक पातक) शुद्धि – यदि अपने परिवार में, कुटुम्ब–खानदान में या घर में सूतक–पातक आदि हैं तो वह दाता भी आहारादि दान के योग्य नहीं होता तथा उसके परिवार के लोग भी दान देने के योग्य नहीं है। यदि अपने घर की लड़की, जिसकी शादी हो चुकी है तो वह अपने ससुराल के द्रव्य का उपयोग आहारादि दान में कर सकती है, घर का नहीं। जो कुंवारी कन्या है, जिसकी शादी नहीं हुई है उसे भी सूतक–पातक का पूरा ही दोष लगता है अर्थात् उतना ही दोष लगता है जितना उसके भाई को अथवा सहोदर को। रजोधर्म की अशुद्धि अवस्था में 6 दिन तक (नियमित है तो, अन्यथा ज्यादा कम भी हो सकता है) आत्म–हत्या आदि के 6 माह तक तथा प्रसूति वाली माँ 50 दिन तक, गर्भवती माँ (जिसके 5 माह से अधिक हो चुके हैं) एवं व्यभिचारिणी स्त्री व व्यभिचारी पुरुष आहारादि दान के योग्य नहीं हैं। सूतक पातक आदि का विशेष कथन करेंगे।

9. क्षेत्र शुद्धि – जहाँ चौका लगाया गया है, वह स्थान भी शुद्ध होना चाहिए। वहाँ आस–पास में शौचालय, पेशाबघर, पशुओं की सार, चप्पल–जूते, चमड़े के बेल्ट, पर्स या अन्य वस्तु के बने हुए, सीप–शंखादि हड्डी से निर्मित कोई वस्तु शराब, माँस, अण्डा, मधु (शहद) आदि पदार्थ भी वहाँ (समीप में, अदृश्य रूप में भी) न हों। किसी पंचेन्द्रिय मृत जीव का कलेवर, चूहा, बिल्ली, छिपकली, मेंढ़क, सर्प इत्यादि समीप में भी न हों तथा चौके में दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चउइन्द्रिय जीव का कलेवर आदि या मुख, आँख, नाक, कान आदि का मल भी न हो, चौके में आलू, प्याज, अदरक, अरबी, मूली, गाजर, शलजम, बैंगन, गोभी, अचार, नवनीत (अमर्यादित मक्खन) तथा ऐसे पदार्थ जिन्हें देख कर घृणा उत्पन्न होती हो वे वहाँ न हों। इसके अलावा चौके में बीड़ी, सिगरेट का पैकेट, तम्बाकू, अफीम, भांग, गांजा, चरस आदि पदार्थ या बारूद आदि से निर्मित आतिशबाजी

के पदार्थ न हों। चौके में पर्याप्त प्राकृतिक प्रकाश हो, वहाँ अशुद्ध वस्त्रादि भी न हों, ऊन के वस्त्र, रेशम आदि के भी वस्त्र न हों, टी. वी., पंखा, कूलर आदि भी न हों, यदि हों तो ढ़के हों तथा बंद हो, चालू नहीं हों। उस चौके में कुदेव, कुगुरु, नेता, अभिनेताओं, नायक, खलनायक, हीरो–हीरोइन आदि के अश्लील चित्रादि न हों। पंच परमेष्ठी आदि के चित्र लगे हों तो कोई बाधा नहीं है चौका शुद्ध हो, सीमा रेखा स्पष्ट हो, कपड़े का शुद्ध धवल चंदोवा हो जो अति नीचा न हो। सत्पात्रों का आहार उसी स्थान पर कराये जहाँ रसोई बनायी जाती हैं, अन्यत्र स्थानों पर उचित नहीं है।

10. **काल शुद्धि** – दिगम्बर जैन श्रमणों की आहार–चर्या का काल सूर्योदय के तीन घड़ी बाद से, मध्यान्ह के सामायिक व स्वाध्याय काल के पूर्व तक, यदि प्रातः काल चर्या के लिए नहीं निकले हैं तो मध्यान्ह की देव वंदना (सामायिक) के बाद से सूर्यास्त के तीन घड़ी पूर्व तक का ही है, इसके पूर्व व बाद का काल शुद्ध नहीं है, सूर्योदय की एक घड़ी के बाद में ही चौके का कार्य शुरू करना चाहिए एवं सूर्यास्त के एक घड़ी पूर्व ही सभी कार्य निपटाने का प्रयास करना चाहिए। सूतक–पातक का काल, सूर्यादि के ग्रहण का काल, अग्नि दाह का काल (जब नगर में शीघ्र ही आग लगी हो) समीप ही किसी की मृत्यु हुई हो अथवा अन्य कोई अप्रत्याशित घटना जैसे जो अत्यन्त शोक उत्पन्न करने वाली हो, संघ में किसी का समाधि मरण हो चुका हो, वह काल भी परिहार करने के योग्य है।

जिज्ञासा 22. दाता के 5 दूषण कौन–कौन से हैं, जिनसे उसे बचना चाहिए?

समाधान: जो दाता के द्वारा दिये गये दान के फल को दूषित करे, वे दूषण कहलाते हैं। बड़े से बड़ा कार्य भी यदि दूषित है तो प्रशंसनीय नहीं है किन्तु लघु कार्य यदि सर्वथा निर्दोष है तो वह प्रशंसनीय ही होता है। अतः उत्तम दाता वही है जो आहारादि दान जैसा उत्तम कार्य (जिसके लिए स्वर्ग के देव, तिर्यंच, नारकी, भोग–भूमि के सभी मनुष्य भी तरसते हैं क्योंकि उनके लिए यह कार्य असंभव है तथा कर्म भूमि के भी सभी मनुष्य यह दान नहीं दे सकते हैं, जिनके अन्दर उक्त अर्हताएं होगी वही देने का अधिकारी हो सकता है) निर्दोष रीति से आहार दे सके, दूषणों से बच सके। तथैव वे 5 दूषण निम्नांकित हैं :

1. अनादर पूर्वक दान देना
2. उदास होकर दान देना
3. कटु शब्द पूर्वक दान देना
4. विलम्बता से दान देना
5. दान देकर पश्चाताप करना

1. अनादर पूर्वक दान देना – यदि दाता अनादर पूर्वक दान दे रहा है तो उस दान का फल उसे पूर्ण नहीं मिल सकता एवं अनादर पूर्वक दान देने से ही पुण्य की क्षीणता व पापों की वृद्धि होती है अनादर पूर्वक दिया गया दान धर्म नहीं हो सकता। अतः दाता को चाहिए कि वह सत्पात्रों को नवधा भक्ति पूर्वक, आदर–सम्मान, श्रद्धादि 7 सामान्य गुणों व 21 विशेष गुणों व 5 भूषण से युक्त होकर ही आहारादि दान दे।

2. उदास होकर दान देना – यदि दान उदासता पूर्वक दिया गया है तो वह भी पाप के संवर व पुण्य के आस्त्रव में सार्थक कारण नहीं बन सकेगा। उदासीनता श्रद्धा, भक्ति, समर्पण की न्यूनता सिद्ध करती है इनके बिना दान समीचीन फल प्रदायी नहीं हो सकता अतः उसे (दाता को) आनन्द पूर्वक दान देना चाहिए।

3. कटु शब्द पूर्वक दान देना – यदि दाता कटुक वचन बोलकर दान देता है तो अमृतोपमा आहार भी विष के समान अनर्थकारी हो जाता है। ऐसा दान सुगति का नहीं दुर्गति का ही कारण होगा वह यशवृद्धि नहीं अपयश ही करेगा। अतः दाता मधुर वचनों का ही प्रयोग करे या प्रसन्नचित मौन रहे। आवश्यकता पड़ने पर बोले अनावश्यक नहीं।

4. विलम्बता से दान देना – जो दाता समयानुसार दान न देकर विलम्बता से दान देता है तो उसे दान का समीचीन फल नहीं मिल पाता। सत्पात्रों को दान देते समय यदि समय का ध्यान नहीं रखा तो वह दान व्यर्थ ही है। साधक अंतराय मानकर लौट भी सकते हैं। हो सकता है वे आपके आहारादि को स्वीकार न करें। क्योंकि किसी श्रावक को पानी उसी समय पिलाओ जब वह प्यासा हो। जब प्यास से वह व्याकुल था तब पानी न पिलाकर मृत्यु के उपरांत सैकड़ों घड़े ढ़ोलना भी व्यर्थ है अतः दान के समय विलम्ब नहीं करना चाहिए। समय निकलने पर पुनः लौटकर नहीं आता। अवसर का लाभ उठाने वाला बुद्धिमान एवं अवसर चूकने वाला मूर्ख ही होता है।

5. दान देकर पश्चाताप करना – दान देकर अहोभाग्य मानना, अपने पुण्य की सराहना करना दाता का भूषण है किन्तु दान देकर पश्चाताप करना दूषण है। उत्तम कार्य करके पश्चाताप अधम प्राणी ही करते हैं, उत्तम पुरुष नहीं। सातिशय पुण्य–वर्धक, भव दुःख हारक, आनन्द दायक, मांगलिक, प्रशस्त कार्य करने पर भी जो दाता पश्चाताप करता है, तो वह असाता वेदनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, अशुभ नाम, नीच गोत्र, अशुभ आयु, मोहनीय कर्म का बंधक होता है। अतः दाता को आहारादि दान के समय एवं बाद में हर्षित होना चाहिए।

जिज्ञासा 23. दान (अतिथि संविभाग व्रत) के कितने अतिचार हैं एवं कौन–कौन से हैं? बताने की कृपा करें।

समाधान: दान (अतिथि संविभाग व्रत) के 5 अतिचार हैं 'आचार्य उमास्वामी' आदि आचार्यों ने कहे हैं जो इस प्रकार हैं :

1. **सचित्त निक्षेप** – हरे पत्तों (सचित पत्तों जैसे केले या कमल के पत्तों पर) आहारादि सामग्री को रखना भी अतिचार है। वर्तमान में पत्तों का प्रयोग बर्तनों के रूप में नहीं होता। संभव है, आज से 2000 वर्ष पहले होता हो। वर्तमानापेक्षा कच्चे/सचित्त पानी से धोए हुए बर्तनों में शुद्ध प्रासुक, मर्यादित पानी या भोजन का उसमें रख देना 'सचित्त निक्षेप' नामक अतिचार है।

2. **सचित्तापिधान** – हरित पत्तों से भोजन सामग्री ढ़ँक देना सचित्ता पिधान नाम का दोष है। वर्तमानापेक्षा कच्चे पानी/अप्रासुक पानी से बर्तनों को धोकर उसे भोजन पर ढ़ंक देना 'सचित्तापिधान' नामक अतिचार है।

3. **परव्यपदेश** – दूसरे दाता की वस्तु स्वयं देना अथवा अपनी वस्तु दूसरों से दिलवाना परव्यपदेश नाम का अतिचार है। परव्यपदेश अतिचार से दूषित दान देने वाला दाता कालान्तर में उसका फल प्राप्त तो करता है किन्तु भोक्ता नहीं होता। अतः दान आदि स्वयं ही अपने न्यायोपार्जित द्रव्य से करना चाहिए।

4. **मात्सर्य** – दानादि उत्तम कार्य करते हुए भी पात्रादि के गुणों में अनुराग या आदर का अभाव होना अथवा दूसरे दाता के गुणों की वृद्धि, यश, ऐश्वर्य आदि को देखकर सहन नहीं कर पाना मात्सर्य नामक अतिचार है। मात्सर्य भाव होने से मन की शुद्धि नहीं रह पाती, कालान्तर में वचन, काय, व आहार जल की आगमोक्त पूर्ण शुद्धि नहीं रह पाती, अतः दाता को मात्सर्य भाव से रहित होना चाहिए।

5. **कालातिक्रम** – सूर्योदय की तीन घड़ी (72 मिनट) बाद से, सूर्यास्त के तीन घड़ी पूर्व तक ही साधुओं का आहारचर्या काल है। इस काल का उल्लंघन करके आहार देना अथवा देरी से धीरे–धीरे आहार देना जैसे– एक ग्रास दे दिया पुनः कुछ समय नहीं दिया अंजुलि खाली है तो मुनिराज अधिक से अधिक एक कायोत्सर्ग प्रमाण काल तक खड़े रह सकते हैं, अधिक विलम्ब होने पर अंतराय कर सकते हैं। अतः अति विलम्बता से या अति शीघ्रता से आहार न दें।

जिज्ञासा 24. अतिचार किसे कहते हैं?

समाधान : व्रत में लगे एक देश दोष अतिचार कहलाते हैं। व्रतों में दोष लगने की चार अवस्थाएं होती हैं –

1. अतिक्रम
2. व्यतिक्रम
3. अतिचार
4. अनाचार

जिज्ञासा 25. अतिक्रमादि चारों की परिभाषाएं एवं दृष्टान्त के माध्यम से उन्हें समझाने की कृपा करें।

समाधान : व्रत के पालन से उत्पन्न हुई उस विशुद्धि का अभाव अतिक्रम कहलाता है। तद् विषयक व्रत का उल्लंघन करने के परिणाम हो जाना व्यतिक्रम है। एक देश व्रत का खण्डन अतिचार है। तीव्र आसक्ति के साथ व्रत का सकल देश खण्डन (मन–वचन–काय तीनों से खण्डन) करना अनाचार है।

उदाहरण :

1. किसी निकट भव्य मंद कषायी भद्र परिणामी श्रावक ने अतिथि संविभाग व्रत लिया। उस व्रत के पालन से उसके परिणाम अत्यन्त विशुद्ध होना चाहिए, किन्तु परिणाम विशुद्ध न होकर लगभग उसी प्रकार के परिणाम हुए जैसे सामान्य दशा में होते हैं। इस प्रकार विशुद्धि का ह्रास हो जाना अतिक्रम हुआ।

2. अतिथि संविभाग व्रत को धारण किये होने पर भी तद्विषय परिणामों का अशुद्ध हो जाना, संक्लेशिता बनना व्यतिक्रम है।

3. अतिथि संविभाग व्रत का यथोचित, रीति से पालन न कर पाना, बार–बार व्रतों में दोष लगना जिससे व्रत का एक देश खण्डित होना जैसे– मात्सर्य करना, अतिथि संविभाग व्रत को भंग करने का विचार कर लेना, स्वयं न करके दूसरों को व्रत पालन कराना इत्यादि अतिचार है।

4. अतिथि संविभाग व्रत को श्रद्धा व आचरण दोनों से छोड़कर असद् प्रवत्ति में संलग्न हो जाना व्रत का अनाचार है अर्थात् व्रत सम्पूर्ण रूप से ही खण्डित कर दिया।

जिज्ञासा 26. उद्गम दोष किसे कहते हैं उसके कितने भेद हैं एवं कौन–कौन से हैं? संक्षेप में समझाने की कृपा करें।

समाधान : आहार के बनाने में श्रावक के माध्यम से जो दोष लगते हैं वे उद्गम दोष हैं जो आहार के उद्गम स्थान पर उद्गम के समय में होते हैं। इन उद्गम दोषों के 16 भेद हैं जो इस प्रकार हैं :

1. **औद्देशिक दोष –** साधु को उद्देश्य करके भोजन बनाना औद्देशिक दोष है। मैं अमुक साधु को ही आहार दूँगा इत्यादि संकल्प पूर्वक बनाया गया भोजन औद्देशिक दोष से दूषित है अतः सुधी श्रावक को चाहिए कि वह अपने निमित्त भोजन बनाये, पात्र दान की भावना रखे। सभी श्रावकों को इस दोष से बचना चाहिए।

2. **अध्यधि दोष –** संयमी साधु को आता देख उनको आहार देने के लिए अपने निमित्त चूल्हे पर रखे जल और चावलों में और जल–चावल मिलाकर पुनः पकाना अथवा

जब तक आहार तैयार न हो जाए तब तक धर्म प्रश्न के बहाने उन्हें चर्चाओं में लगाये रहना यह अध्यधि नामक दोष है। ऐसा करके श्रावक को मायाचारी नहीं करनी चाहिए। उसे अपनी वृत्ति निश्छल रखनी चाहिए।

3. पूति दोष – प्रासुक आहारादिक वस्तु सचित्त आदि वस्तु से मिश्रित हो तो वह पूति दोष कहलाता है। प्रासुक द्रव्य भी पूति कर्म से मिला हुआ पूति कर्म दोष कहलाता है।

पूति कर्म दोष का नाम आरम्भ दोष भी है। इसके 5 भेद हैं–

1. चूल्हा, 2. ओखली, 3. कड़छी, 4. आहार बनाने के बर्तन, 5. गंध युक्त आहारादि की द्रव्य।

इन पांचों में संकल्प करना कि इन चूल्हे आदि से बना भोजन जब तक साधु को नहीं दे देंगे, तब तक न किसी को आहार देंगे, न स्वयं उपयोग करेंगे। ये दोष भी पूति दोष में ही गर्भित हैं।

4. मिश्र दोष – प्रासुक शुद्ध, मर्यादित तैयार किया गया भोजन (आहार) अन्य भेषधारियों के साथ तथा गृहस्थों के साथ संयमी साधुओं को देने का उद्देश्य करे तो मिश्र दोष जानना चाहिए। इस दोष से भी दाता को बचना चाहिए।

5. स्थापित दोष – जिस बर्तन में (कढ़ाही, भगौना, भगौनी, डेगची, तवेला आदि) में भोजन (दाल, चावल, कड़ी, खिचड़ी, हलवा लपसी आदि) पकाया हो, उससे दूसरे बर्तन में पके हुए भोजन को रखकर अपने घर में अन्यत्र या दूसरे के घर में ले जाकर उस अन्न से बनी वस्तुओं को वहाँ स्थापित कर दें, (रख दे), तो वह स्थापित नामक दोष होता है। श्रावक को ऐसा नहीं करना चाहिए।

6. बलि दोष – यक्ष, नागादि या अन्य देवी–देवताओं के लिए जो (बलि–पूजा) पूजन से बचा हुआ नैवेद्य है, वह बलि दोष से दूषित है अथवा संयमी साधकों के आगमन के लिए जो बलि कर्म (सावद्य पूजन आदि) करें तो वहाँ भी बलि दोष जानना। बलि का अर्थ है नैवेद्य अर्थात् पूजा का बचा हुआ नैवेद्य (पूड़ी, पकवान, लड्डू, पेड़ा, बर्फी, खाजा, पपड़ी इत्यादि भोज्य पदार्थ) साधु को आहार में दे देना बलि दोष है यद्यपि यह दोष वर्तमान काल में देखने में कम आता है। सम्भवतः पहले ये दोष रहा हो।

7. प्राभृत दोष – प्राभृत दोष का अर्थ है – काल का परिवर्तन अर्थात् आहार देने से पहले सोचा था कि आहारदान अमुक वर्ष, महीना, वार, तिथि में देंगे। ऐसा संकल्प करके पुनः उसमें परिवर्तन कर लेना प्राभृतनाम दोष है। इस दोष के 2 भेद हैं –

1. **बादर प्राभृत दोष**	2. **सूक्ष्म प्राभृत दोष**
1. अपकर्षण	1. अपकर्षण

2. उत्कर्षण 2. उत्कर्षण

अपकर्षण – काल की हानि का नाम अपकर्षण है।

उत्कर्षण – काल की वृद्धि का नाम उत्कर्षण है।

1. **अपकर्षण बादर प्राभृत दोष** – वर्ष, महीना, पक्षादि में कमी कर देना अपकर्षण बादर प्राभृत दोष है।

2. **उत्कर्षण बादर प्राभृत दोष** – विवक्षित वर्ष, महीना, पक्ष, तिथि में वृद्धि कर देना उत्कर्षण बादर प्राभृत नामक दोष है।

1. **अपकर्षण सूक्ष्म प्राभृत दोष** – अपरान्ह व मध्यान्ह से समय घटाकर प्रातः काल आहार देना अपकर्षण सूक्ष्म प्राभृत दोष है।

2. **उत्कर्षण सूक्ष्म प्राभृत दोष** – पूर्वान्ह काल का विचार कर मध्यान्ह या अपरान्ह में आहार देना उत्कर्षण सूक्ष्म प्राभृत दोष है।

इन दोषों से भी उत्तम दाता को बचना चाहिए।

8. **प्रादुष्कर दोष** – इस दोष के भी 2 भेद हैं –

1. **संक्रमण** – आहार चर्या करते हुए साधु के चौके में आ जाने पर बर्तन या भोजन सामग्री को यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ निष्प्रयोजन परिवर्तित करना संक्रमण प्रादुष्कर दोष है।

2. **प्रकाशन** – साधु के चौके या गृह में आ जाने पर दीपक जलाना, बर्तन मांजना, चौके की सफाई करना, पोंछा लगाना, किवाड़ खोलना, खिड़की खोलना, मण्डप हटाकर प्रकाश करना इत्यादि प्रकाशन प्रादुष्कर दोष है। इस प्रकार के दोष कभी आदर्शमय दाता से नहीं लग पाते है।

9. **क्रीत दोष** – क्रीत दोष का अर्थ है – क्रय करना या खरीदना। इस क्रीत दोष के 2 भेद हैं –

1. द्रव्य क्रीत दोष	2. भाव क्रीत दोष
1. स्वद्रव्य क्रीत दोष	1. स्व भाव क्रीत दोष
2. परद्रव्य क्रीत दोष	2. पर भाव क्रीत दोष

साधु के आहारार्थ आ जाने पर किसी वस्तु का क्रय करके आहार देना क्रीत दोष है।

स्वकीय द्रव्य क्रीत दोष का अर्थ है, अपनी गाय, भैंस, बकरी, बैल, धन–धान्य बेचकर आहार की सामग्री खरीद कर लाना।

परकीय द्रव्य क्रीत दोष का अर्थ है दूसरे के रखे हुए (अपने पास दूसरे की गिरवी आदि

रखे हुए) घोड़ा, बैल, गाय, भैंस आदि को बेचकर आहार देना।

स्वकीय, प्रज्ञप्ति आदि विद्या एवं चेटकादि मंत्रों को किसी दूसरे को देकर, प्राप्त हुए द्रव्य से आहार का सामान खरीद कर पुनः आहार देना स्वभाव क्रीत दोष है।

पर भाव क्रीत दोष दूसरे की प्रज्ञप्ति आदि विद्या एवं चेटकादि मंत्रों को किसी अन्य व्यक्ति को देकर उससे प्राप्त द्रव्य से आहार का सामान खरीद कर पुनः साधु को आहार देना परभाव क्रीत नामक दोष है। वर्तमान में ये दोष प्रायः देखने में नहीं आता, फिर भी यदि कोई व्यक्ति इन दोषों को लगाते हों तो वे दाता ध्यान रखें उन्हें ऐसे दोष भी नहीं लगाना चाहिए। यथालब्ध आहार दे देना चाहिए। इस प्रकार के दोष लगाकर दिया गया आहार संक्लेशता का कारण भी बन सकता है।

10. **प्रामृष्य दोष** – साधुओं को आहार कराने के लिए दूसरे दाताओं से (चौके वालों से) भात, दाल, रोटी आदि भोज्य पदार्थ/खाद्य सामग्री उधार लाकर देना प्रामृष्य नाम दोष है। इसके भी 2 भेद हैं –

1. **संवृद्धिक** – जितना कर्ज लिया था; उससे अधिक बाद में वापिस करना पड़े, यह संवृद्धिक दोष है।

2. **अवृद्धिक** – जितना कर्ज लिया था, उतना ही वापिस करना अवृद्धिक प्रामृष्य दोष है। उत्तम दाता को इन दोषों से अवश्य ही बचना चाहिए।

11. **परिवर्तन दोष** – साधुओं को आहार देने के लिए अपनी घटिया साठी के चावल, घटिया गेहूँ, दाल, बूरा, गुड़, दूध, सब्जियाँ आदि देकर अच्छे बासमती चावल, अच्छे गेहूँ, ज्वार, चना, बाजरा, दाल, दूध, बूरा, तेल, घी, गुड़, दही, फल–सब्जियाँ आदि लेना परिवर्तन नाम का दोष है। उत्तम दाता को ऐसे दोषों से बचने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

12. **अभिघट दोष** – अभिघट दोष के 2 भेद हैं –

1. एक देशाभिघट **2. सर्वदेशाभिघट**

(1) आचिन्न देशाभिघट

(2) अनाचिन्न देशाभिघट

योग्य वस्तु को आचिन्न एवं अयोग्य वस्तु को अनाचिन्न कहते हैं।

(1) **आचिन्न** – सरल पंक्ति से तीन या सात घरों से आई हुई आहार–सामग्री (दाल, भात, रोटी आदि आहार) है तो वह आचिन्न है ग्रहण करने के योग्य है, उसमें कोई दोष नहीं है। किन्तु –

(2) **अनाचिन्न** – उन घरों के विपरीत क्रम या तीन या सात घरों के अतिरिक्त से आई हुई आहार–सामग्री (दाल, भात, रोटी, दलिया, कढ़ी, खिचड़ी आदि) अनाचिन्न

है अर्थात् ग्रहण करने के अयोग्य है, क्योंकि यत्र–तत्र स्थित घरों से आये हुये भोजन में दोष देखा जाता है, क्षेत्र शुद्धि, ईर्यापथ शुद्धि आदि नहीं बन पाती।

2. सर्वदेशाभिघट – स्व ग्रामपर ग्राम, स्वदेश, परदेश की अपेक्षा से सर्वदेशाभिघट 4 प्रकार का है –

पूर्व व अपर मोहल्ले से वस्तु का लाना प्रथम अभिघट है। पूर्व पाटक अर्थात् एक गली या मोहल्ले से दूसरे गली या मोहल्ले में भात आदि को ले जाकर मुनि को देना या दूसरे किसी अन्य मोहल्ले से लाकर स्वग्राम में देना, स्वदेश से स्वग्राम में लाकर देना परदेश से स्वग्राम या स्वदेश में लाकर देना, इस प्रकार सर्वाभिघट – दोष के ये 4 प्रकार होते हैं। इसमें प्रचुर मात्रा में ईर्यापथ दोष देखा जाता है। दूर से आने पर श्रावक जन ईर्यापथ शुद्धि का पालन नहीं कर सकेंगे। अतः स्वग्राम, परग्राम, स्वदेश, परदेश से लाया हुआ आहार (दाल, भात, रोटी, कढ़ी, खिचड़ी, दलिया इत्यादि) साधु जनों के लिए अग्राह्य है। यद्यपि दूध, फल, सूखे मेवा आदि पदार्थों को लाकर देने में कोई दोष नहीं है, फिर भी श्रावक को स्व विवेक से कार्य करना चाहिए एवं बचना चाहिए।

13. उद्भिन्न दोष – जो ढ़क्कन आदि से ढ़ँकी हुई है अथवा जिस पर लाख या चपड़ी लगी हुई है, जो नाम या बिम्ब आदि से मुद्रित है अर्थात् जिस पर सील–मुहर लगी हुई है या चिट चिपकी हुई है, ऐसे बर्तन में रखी हुई कोई भी वस्तु, औषधि, घी, बूरा, गुड़, खांड़, लड्डू, नमकीन, मिष्ठान, पकवान, मावा, दाल, सब्जी, हलुवा इत्यादि उसी समय बर्तन खोलकर देना उद्भिन्न दोष है। क्योंकि उसमें चींटी आदि का प्रवेश हो सकता है, उन्हें बाधा पहुँच सकती है, जीव वध की संभावना रहती है। अतः उक्त कार्य साधु के आने के पूर्व ही कर लेना चाहिए।

14. मालारोहण दोष – नसैनी, काठ की सीढ़ी, पत्थर आदि पर पैर रखकर या उंगली के बल खड़े होकर, उचक कर घर के ऊपरी भाग में रखे हुए पदार्थ (घी, दूध, पुआ, लड्डू आदि मिष्ठान, मेवादि) उसी समय निकालना जब (साधु चौके में प्रवेश कर चुके हों) मालारोहण नामक दोष है। इसमें दाता के गिरने का भय दिखाई देता है। अतः उक्त कार्य उसे पूर्व में ही कर लेना चाहिए।

15. आच्छेद्य दोष – संयतों को आहार चर्या हेतु आते देखकर राजा, चोर या मुखिया (घर का प्रमुख सदस्य) के द्वारा कुटुम्बियों को ऐसा कहे जाने पर कि यदि तुम संयतों को आहार नहीं दोगे तो तुम्हारे धन को लूट लिया जाएगा, द्रव्य का अपहरण कर लिया जाएगा अथवा ग्राम/घर से बाहर निकाल दिया जाएगा, इस प्रकार राजा, चोर, मुखिया के भय से दिया गया आहारादि दान आच्छेद्य दोष वाला होता है। अतः आहारादि दान किसी के भय से नहीं स्वयं की इच्छा से देना चाहिए। जिससे कोई दोष न लगे।

सातिशय पुण्य का आश्रव, पाप कर्मों का संवर व निर्जरा हो।

16. अनीशार्थ दोष – अनीश = अप्रधान, **अर्थ** = कारण अर्थात् जिस ओदनादि भोज्य का अप्रधान कारण है, वह अनीशार्थ दोष है अथवा जिस भोजनादि द्रव्य का दाता स्वयं उसका स्वामी नहीं है वह भी अनीश कहलाता है। अनीशार्थ दोष के 2 भेद हैं –

1. ईश्वर – ईश्वर अनीशार्थ दोष को सारक्ष दोष भी कहते हैं जो आरक्षों के साथ रहे वह सारक्ष है। वह (दाता) यद्यपि दान देना चाहता है किन्तु नहीं दे पाता है। अन्य लोग विघात कर देते हैं। जैसे– राजा देना चाहे, किन्तु मंत्री, पुरोहित आदि विघ्न पैदा करें। ऐसा आहारादि दान ईश्वर अनीशार्थ दोष से दूषित कहलाता है।

2. अनीश्वर – जिस दान का अप्रधान पुरुष हेतु होता है वह दान अनीश्वर अनीशार्थ है। यहाँ कारण में कार्य का उपचार किया जाता है। यह अनीश्वर अनीशार्थ तीन प्रकार का है –

1. व्यक्त, 2. अव्यक्त, 3. संघाटक

1. व्यक्त अनीश्वर – दानादि द्रव्य का स्वामी नहीं होता है, किन्तु बुद्धिपूर्वक आहारादि का दाता व्यक्त अनीश्वर कहलाता है।

2. अव्यक्त – बालक, अज्ञानी आहारादि का दाता अव्यक्त कहलाता है। मुनिजन इस प्रकार के दाता से आहार लें तो वह अनीशार्थ अनीश्वर अव्यक्त दोष कहलाता है।

3. संघाटक – संघाटक अर्थात् व्यक्ताव्यक्त अनीश्वर द्वारा दिया गया आहार यदि मुनिजन लेते हैं तो उनके व्यक्ताव्यक्त संघाटक अनीश्वर नाम अनीशार्थ दोष होता है क्यों कि इसमें अपाय देखा जाता है अथवा ईश्वर (स्वामी) व्यक्त हो या अव्यक्त उसके द्वारा निषेध कर दिया गया है फिर भी साधु को दाता ने दान दिया है वह दान व्यक्ताव्यक्त ईश्वर नामक अनीशार्थ दोष से दूषित कहलाता है।

ईश्वर के	+	**1. निसृष्ट 2. अनिसृष्टि तथा**
अनीश्वर के	+	**1. निसृष्ट 2. अनिसृष्ट**

इस प्रकार चार भेद होते हैं।

अन्य प्रकार से ईश्वर के 1. सारक्ष 2. व्यक्त 3. अव्यक्त 4. संघाटक चार भेद हैं।

अनीश्वर के भी 1. सारक्ष 2. व्यक्त 3. अव्यक्त 4. संघाटक के भेद से चार प्रकार के भेद माने गये हैं।

मंत्रादि युक्त स्वामी को– सारक्ष,

बालक–अज्ञानी स्वामी को– अव्यक्त,

बुद्धिमान स्वामी को– व्यक्त,

अव्यक्त रूप पुरुष को– संघाटक कहते हैं।

जिज्ञासा 27. आपने दाता के बारे मे कहा था कि उत्तम दाता सप्त व्यसन आदि से रहित हों, कृपया उन सप्त व्यसन के बारे में बतायें।

समाधान: व्यसन का अर्थ है – आदत। किन्तु वर्तमान में व्यसन शब्द बुरी आदतों के लिए प्रसिद्ध हो चुका है। व्यसन शब्द वि + असन से निर्मित हुआ है। ''वि'' का अर्थ है – विकृत, विकृति पैदा करने वाला, विपरीतता का जनक। ''असन'' शब्द का अर्थ है आहार अथवा महापापों की कारणभूत, लोक व्यवहार के प्रतिकूल, धर्माचरण व सुसंस्कारों की विध्वंसक, आगम, लोक–व्यवहार व धर्म के विरुद्ध निंदनीय बुरी आदतों को ही व्यसन कहते हैं। ये सप्त व्यसन मानो नरक में जाने के सात द्वार ही हैं जो इन व्यसनों में आसक्त हुआ वह नरकों में पहुँच गया। जिसने इन व्यसनों का त्याग कर दिया है, वे पुरुष ही वास्तव में पुरुष कहलाने के योग्य हैं। वे ही आत्महित एवं परहित करने में समर्थ हो पाते हैं। वे सप्त व्यसन निम्नांकित हैं –

"जुआ खेलना माँस मद वेश्या व्यसन शिकार।
चोरी पर रमणी रमण सातों व्यसन निवार॥"

1. **जुआ खेलना –** पैसों की बाजी लगाकर जितने भी हार–जीत के खेल खेले जाते हैं, वे सब जुआ कहलाते हैं। सामान्यतया मनोरंजन के लिए ताश के पत्तों से खेलना जुआ नहीं है किन्तु पैसों की बाजी लगाकर खेलना जुआ है। शर्त लगाना भी जुआ कहलाता है।

इस व्यसन में कुख्यात **'युधिष्ठिर'** नामक पाण्डु पुत्र सत्पुरुष होते हुए भी तत्काल में निंदा व दुखों को प्राप्त हुए।

2. **माँस खाना–** दो इन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय व जितने भी औदारिक शरीरध ाारी जीव हैं उनके शरीर/मृत कलेवर को माँस कहा जाता है। अण्डा भी माँस का ही एक भेद है। माँस खाने वाला निःसन्देह दयाहीन, निर्दयी, अधम एवं पापी कहलाता है। उसके मन में कभी पवित्र विचारों का जन्म नहीं होता। माँसाहारी दुर्गति का ही पात्र होता है।

इस व्यसन में **'बक'** नामक राजा कुख्यात हुआ। माँसाहारियों के दुःखद जीवन व दुर्गतियों का वर्णन 'प्रथमानुयोग' के अनेकों शास्त्रों में दिया गया है।

3. **मद्यपान–** मद्य शराब को कहते हैं। यह सड़े–गले फलों से, अनाज से, महुवा, गुड़ आदि से बनायी जाती है। इसमें असंख्यात जीवराशि का निचोड़ा हुआ रस है। यह बुद्धि को नष्ट करके मदोन्मत कर देती है। मद्यपायी व्यक्ति विवेक शून्य होकर पापों में और अधिक प्रवृत्ति करता है। उसका तन, धन नष्ट हो जाता है। मन भी अपावन हो जाता

है। अतः चेतना को पुनः अधोगति की यात्रा करनी पड़ती है। मद्यपायी के हृदय दया शून्य, धर्म शून्य, विवेक शून्य, सुख शांति से रहित नारकीयों के समान ही होते हैं।

इस व्यसन में **'यदुवंशी कुमार'** (जिन्होंने द्वीपायन मुनि पर घोर उपसर्ग किया था) प्रसिद्ध हुए।

4. वेश्या सेवन – बाजारू स्त्रियाँ जो धन के लोभ में आकर अपने शील को बेच देती हैं, ऐसी दैहिक व्यापार करने वाली व्यभिचारिणी स्त्रियाँ वेश्याएँ कहलाती हैं। इनके साथ सम्बन्धा रखना 'वेश्यासेवन व्यसन' है। वे पुरुष महापापी हैं जो अपने कुल में दाग लगाकर, धन गंवाकर धर्म भ्रष्ट हो, दुःखों को आमंत्रित करने हेतु इनसे सम्पर्क रखते हैं। उनका इस लोक में तो अपयश होता ही है, परलोक में भी उन्हें नरकों के दारुण दुःखों को सहन करना पड़ता है।

इस व्यसन में सेठ पुत्र **'चारुदत्त'** का नाम कुख्यात है।

5. शिकार– मनोरंजन करने में, खेल–खेल में, शौक की पूर्ति में निःसहाय मूक पशुओं की जान ले लेना 'शिकार' नामक व्यसन है। दूसरों को दुःख देकर उनके प्राणों का हरण कर कोई सुखी नहीं हो सकता। शिकार बुद्धि पूर्वक/संकल्प पूर्वक की गई महाहिंसा है। हिंसा दुःखों की जननी है, महापाप है। सभी धर्मों में इसका निषेध बताया है। जो शिकार करता है, कराता है, या करने वाले की अनुमोदना करता है, निःसन्देह वह महापापी है। दुर्गति का पात्र है। (मूक व असहाय) पशुओं की संतान पर जुल्म ढाहना मानव का कार्य नहीं, दानवों का ही कुकर्म हो सकता है। वर्तमान में भी अपने शौक की पूर्ति एवं सौन्दर्य के लिए अनेक मूक पशुओं का वध हो रहा है। यह सामूहिक शिकार है। पहले एक व्यक्ति किसी एक पशु का वध करता था किन्तु आज कत्लखानों के माध्यम से सामूहिक शिकार हो रहा है। जो व्यक्ति पशुवध से निर्मित वस्तुओं के उपयोग में संलग्न हैं, वे भी निःसन्देह शिकारीवत् ही हैं। जैसे– चमड़े की वस्तुओं का प्रयोग, चर्बी युक्त क्रीम, रक्त मिश्रित नखपॉलिश व लिपिस्टिक का प्रयोग, रेशम की साड़ी आदि का प्रयोग, हाथी दाँत के आभूषण, सेन्ट इत्यादि।

इस व्यसन में **'ब्रहमदत्त चक्रवर्ती'** कुख्यात हुआ।

6. चोरी– वस्तु के मालिक की अनुमति के बिना किसी की पड़ी हुई, भूली हुई, रखी हुई, दी हुई या छिपकर के वस्तु को ग्रहण कर लेना चोरी है। अपनी वस्तु का ही सदुपयोग करें। दूसरे की वस्तु की आवश्यकता यदि है तो माँग करके लें, चोरी से नहीं। चोरी करने वाले व्यक्ति परभव में नारकी, ऊँट, गधा, बैल, खच्चर, भैंसा आदि बनते हैं जो कि उसकी सवारी के काम आकर उसका (जिसकी चोरी की थी) धन चुकाते हैं। चोरों

का कोई विश्वास नहीं करता सभी उनसे दूर रहना ही चाहते हैं। चोरों की प्रतिष्ठा, मान–सम्मान सभी नष्ट हो जाते हैं। बड़े–बड़े महापुरुषों के भी इस पाप से अधोनेत्र हो जाते हैं। उनकी चोरी का भेद खुलने पर उन्हें बहुत दुःख होता है। पुनः वे दीर्घकाल तक पश्चाताप व खेद के साथ आर्त–रौद्र ध्यान के साथ मरकर दुर्गति के पात्र होते हैं।

इस व्यसन में **जटा–जूटधारी तपस्वी** एवं **अंजन चोर** कुख्यात हुआ।

7. परस्त्री सेवन– धर्म नीति, लोक नीति, सामाजिक नियमानुसार, आगमोक्त विधि से परणायी गई स्वकीय परिणीता स्त्री को (स्त्रियों के लिए पुरुषों को) छोड़ कर शेष स्त्रियों से सम्बन्ध रखना, उनके प्रति बुरे विचार रखना, उनके साथ गलत चेष्टाएं करना परस्त्री नाम का व्यसन है। इस व्यसन को करने वाला व्यक्ति चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, जन सामान्य की दृष्टि में भी निंदा का पात्र बन जाता है। जीवन भर की इज्जत, प्रतिष्ठा, मान–सम्मान क्षण भर में धुल जाते हैं चेहरे पर अमिट कलंक का टीका लग जाता है। पुनः ऐसा व्यक्ति जीवन को अति संक्लेशता व दुःखों के साथ व्यतीत करता है। पर भव में नरकों के दारुण दुःखों को दीर्घकाल पर्यन्त सहन करता है। क्षण भर के असद् विचार, असद् चेष्टा, क्रिया का परिणाम अनेकों भवों को कलंकित व दुःखों से पूर्ण बना देना है। विज्ञ पुरुष इनसे बचने का एवं ऐसे पुरुषों की संगति का भी त्याग कर देते हैं। अतः पुरुषों को कितना भी समझाओं, बार–बार ऐसी ही गलतियाँ करते रहते हैं जो कि उनके लिए दीर्घकाल तक दुःख व पश्चाताप का ही कारण होती हैं।

इस व्यसन में **'रावण'** आदि पुरुष कुख्यात हुए।

इन सप्त व्यसनों का त्याग करने वाला श्रावक ही आहारादि दान देने के योग्य है। सप्त–व्यसनी नहीं।

इन सप्त–व्यसनों का विस्तार से कथन, तर्क युक्त एवं आगमिक कथाओं, लौकिक दृष्टान्त सहित लेखक की "सप्त अभिशाप" कृति में देखें।

जिज्ञासा 28. मूलगुण किसे कहते हैं? श्रावक के मूलगुण कितने होते हैं? बताने की कृपा करें, जिनका धारण करना दाता के लिए अनिवार्य है?

समाधान: मूल गुण का अर्थ है – प्रधान गुण या बीजभूत गुण। मूल का अर्थ होता है जड़। जिस प्रकार जड़ के बिना वृक्ष की वृद्धि, स्थिति, फलोत्पत्ति असम्भव है उसी प्रकार मूल गुणों के बिना श्रावक की स्थिति, वृद्धि, सार्थकता (फलोत्पत्ति) असम्भव है अर्थात् मूल गुणों के अभाव में श्रावक श्रावक नहीं हो सकता। श्रावक पद के लिए अनिवार्यभूत गुणों को मूलगुण कहते हैं। श्रावक के 8 मूलगुण आचार्यों ने इस प्रकार से कहे हैं :

प्रथम प्रकार– 5 प्रकार के उदम्बर फल (बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर,

अंजीर) और 3 मकार (मद्य, माँस, मधु) का त्याग।

दूसरी प्रकार– पाँचों पापों (हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह) का स्थूल त्याग अर्थात् पाँच अणुव्रतों (अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रह परिमाणाणुव्रत) का पालन करना और 3 मकार का त्याग करना।

तीसरी प्रकार –

1. मद्य त्याग, 2. माँस त्याग, 3. मधु त्याग, 4. पाँच प्रकार के उदम्बर फलों का त्याग, 5. नित्य देव दर्शन करना, 6. रात्रि भोजन का त्याग, 7. छना हुआ जल ही प्रयोग करना, 8. जीवों पर दया करना।

1. **मद्य का त्याग –** शराब का त्याग। सड़े–गले पदार्थों (महुआ, अनाज, फल–फूलों या अन्य पदार्थों को सड़ाकर जिसमें अनन्त जीव राशि पैदा हो जाती है ऐसे पदार्थों) से निर्मित जिसमें असंख्यात् जीवों के कलेवरों का रस है ऐसी अपवित्र, मादक, धर्म–विवेक–यश–पवित्रता–धन–शरीर– प्रतिष्ठा आदि को नष्ट करने वाली अनंत दुःखों की हेतु, नरकादि दुर्गति की कारणभूत सभी प्रकार की (इंगलिश, देशी, दारू, बीयर, रम इत्यादि) शराबों का तथा ऐसी औषधियों का जिनमें मद्य का अंश भी हो, जीवन पर्यंत त्याग करना मद्य त्याग नामक मूल गुण है।

2. **माँस का त्याग –** दो इन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तक औदारिक शरीरधारी सभी जीवों के मृत कलेवर को माँस की संज्ञा है। अत्यन्त घृणित पाप का पुंज, नरकादि दुःखों का कारणभूत माँस सज्जनों को दूर से ही छोड़ देना चाहिए। अण्डा भी माँस कहलाता है। इसके सेवन करने वालों में उपदेश सुनने की भी पात्रता नहीं है। माँस एवं अण्डा के त्याग के साथ ही सुधी श्रावक को उन पदार्थों का भी त्याग कर देना चाहिए, जिन में त्रस जीवों की उत्पत्ति हो चुकी हो जो पदार्थ मर्यादा के बाहर हैं जैसे– 24 घंटे से अधिक समय वाला अचार, 48 मिनट से अधिक समय वाला नवनीत, घुना हुआ अनाज, सड़ी गली सब्जी व फल, रात्रि भोजन इत्यादि पदार्थों का त्याग करना भी अनिवार्य है। सुधी श्रावक को माँस खाना तो दूर रहा वे माँसाहारी व्यक्तियों की संगति भी न करें, माँसाहारी की पाप पूर्ण क्रियाओं की कभी अनुमोदना न करें। सुधी श्राविकाओं को निर्दोष माँस त्याग व्रत का पालन करने के लिए खून से मिश्रित लिपिस्टिक, नेलपॉलिश, चर्बी युक्त क्रीमों व साबुन का भी त्याग कर देना चाहिए अन्यथा माँस खाने के बराबर दोष लगता है। अज्ञानतावश हुए कार्य से कम पाप बंध एवं जान बूझ कर किये निंद्य कार्य से तीव्र पाप बंध होता है। अतः माँस का त्याग श्रावक का दूसरा अनिवार्य मूल गुण है।

3. **मधु का त्याग –** मधु शहद को कहते हैं। शहद मधु मक्खियों द्वारा पुष्पों के पराग से निर्मित होता है किन्तु जिस छत्ते में वे पराग इकट्ठा करती हैं वही वे अपना

मलोत्सर्ग करती हैं उसी में असंख्यात् मधुमक्खियों का जन्म होता रहता है। भील लोग आग जलाकर छत्ता तोड़ कर (छत्ते को निचोड़ कर) मधु ले आते है। जिसमें असंख्यात् जीवों को निचोड़ दिया जाता है। ऐसा घृणित शहद सुधी जनों को दूर से ही त्याज्य है। शहद की 1 बूँद के सेवन से 7 से 12 गाँवों को जलाने के बराबर पाप लगता है। अतः मधु का त्याग प्रत्येक श्रावक के लिए अनिवार्य है।

4. उदम्बर फलों का त्याग – 5 प्रकार के उदम्बर फलों (बड़, पीपल, ऊमर, कठुमर, पाकर, अंजीर) का त्याग जीवन पर्यन्त करना क्योंकि इन फलों में असंख्यात् त्रस जीवों का समूह विद्यमान रहता है जब इन फलों को कोई तोड़ता है तो उसमें अनेकों छोटे–छोटे जीव उड़ते से दिखायी देते हैं। विवेकी जन भूलकर भी असंख्यात् जीवों के घात का पाप उदम्बर फल खाकर नहीं करते। यदि आप उदम्बर फलों को नही जानते हों तो आपको कभी अनजान फलों का सेवन नहीं करना चाहिए। अनजान फलों का भी सुधी श्रावक सेवन नहीं करते।

5. नित्य देव दर्शन करना – वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी जिनेन्द्र भगवान के श्रद्धा, सर्मपण व भक्ति के साथ दर्शन करना देव दर्शन है। जिन दर्शन ही निज दर्शन का कारण है। उन्हें देख कर हमें भी अपने स्वरूप को पाने की भावना जाग्रत होती है। जिन बिम्ब रूपी दर्पण में हमें अपने पाप भी दृष्टिगोचर होते हैं जिससे हम पापों से मुक्त भी हो सकते हैं। जिन मूर्ति को देखकर साक्षात् जिनेन्द्र भगवान के दर्शन (पूजा भक्ति) समस्त पापों को नष्ट करने वाले, सातिशय पुण्य बंध के हेतु दुःखों को नाश करने वाले एवं सुखों के सृजन हार होते हैं। सुधी श्रावक को नित्य ही देव दर्शन करना चाहिए।

(इसका विस्तार से कथन लेखक की 'जिन दर्शन से निज दर्शन' लघु एवं बोधप्रद कृति में देखें।)

6. रात्रि भोजन का त्याग – सूर्योदय होने से 2 या 1 घड़ी के बाद तथा सूर्यास्त के 2 या 1 घड़ी पूर्व ही श्रावक को अपना भोजन करना चाहिए रात्रि में भोजन करना माँस खाने के बराबर है एवं रात्रि में पानी पीना रक्तपानवत् दोषप्रद है। ऐसा कथन अनेकों जैनेत्तर ग्रन्थों में भी आया है। जैन ग्रन्थों में रात्रि भोजन का सर्वथा निषेध ही किया है। रात्रि में बना भोजन भी नहीं करना चाहिए। दिन में बना भोजन दिन में ही करना चाहिए। जो लोग रात्रि में भोजन बनाकर दिन में भी करते हैं तब भी उन्हें रात्रि भोजन के बराबर ही पाप लगता है। अतः सुधी श्रावकों को चारों (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय) प्रकार का भोजन रात्रि में निषिद्ध है।

1. **खाद्य–** जिसे खाया जाए तथा जो उदर पूर्ति का मूल तत्व है वह खाद्य भोजन

है। जैसे– दाल, रोटी, चावल, लड्डू, बर्फी, फल, मेवा इत्यादि।

2. स्वाद्य– स्वाद्य भोजन वह है जिसको स्वाद के लिए खाया जाता है। जैसे– सौंफ, इलायची, लौंग, सुपारी इत्यादि।

3. लेह्य– चाटकर सेवन किये जाने वाले पदार्थ लेह्य पदार्थ कहलाते हैं। जैसे– रबड़ी हलुवा आदि।

4. पेय– पीने योग्य पदार्थ पेय कहलाते हैं। जैसे– पानी, दूध, फलों का रस, छाछ इत्यादि।

सुधी श्रावक को रात्रि में उक्त चारों प्रकार के आहार का त्याग करना अनिवार्य है, तभी वह रात्रि भोजन का त्यागी कहलाएगा अन्यथा नहीं। जो चारों प्रकार के आहार का त्याग करने में असमर्थ हैं उन्हें अपनी शक्ति के अनुसार 1, 2, 3, 4 आदि प्रकार के आहार का रात्रि के लिए अवश्य ही त्याग करना चाहिए। यह भी श्रावक का छटवाँ अनिवार्य मूल गुण है। रात्रि में चारों प्रकार के भोजन का त्याग करने वाले सुधी श्रावक को 1 वर्ष में 6 माह के उपवास करने के बराबर पुण्यार्जन होता है।

(इसका विशेष वर्णन लेखक की "निश भोजन त्याग क्यों?" कृति में देखें।)

7. अनछने जल का त्याग – (छने हुए प्रासुक जल का प्रयोग करना) अनछने जल की एक बूँद में जैनागमानुसार असंख्यात जीव होते हैं। वे जीव यदि अपना आकार कबूतर के बराबर कर लें तो तीनों लोकों में भी न समायें ऐसा कुछ मनीषियों का कहना है एवं वैज्ञानिकों के द्वारा भी अनछने जल की 1 बूँद में 36450 जीव सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से देखे गये हैं। अतः अहिंसा धर्म का पालन करने हेतु प्रत्येक सुधी श्रावक को पानी खादी या लट्टा के मोटे कपड़े से (जिस कपड़े में सूर्य की किरण सीधी पार न हो) छानना चाहिए वह भी दुहरे कपड़े से छानें। पुनः उस बिलछानी को कड़ेदार बाल्टी से उसी कुंए, नदी, झील आदि में पानी की सतह पर धीरे से छोड़े जिससे जीव घात न हो। कपड़े का विस्तार बर्तन के मुख से तिगुना लम्बा, दुगना चौड़ा हो जिससे पानी छानने में बाधा न हों 'देवसेन' आदि अनेकों आचार्यों ने कहा है कि पानी का प्रयोग उसी प्रकार मितव्ययता के साथ करें जिस प्रकार दूध, घी आदि का प्रयोग किया जाता है। छने हुए जल की मर्यादा अन्तर्मुहूर्त (2 घड़ी = 48 मिनट) के पूर्व तक ही है। दो घड़ी बाद जब–जब जल प्रयोग करें तो जल पुनः छानना चाहिए।

इसका विस्तार से कथन लेखक की अन्य कृति 'जल गालन क्या? क्यों? कैसे?' में देखें।

8. जीवों पर दया करना – दया, करुणा, अनुकम्पा, अहिंसा, रहम इत्यादि शब्द

कथंचित् एकार्थवाची हैं। दया को ही आचार्यों ने धर्म कहा है। अहिंसा के अभाव में धर्म का अस्तित्व ही नहीं रहता। अहिंसा ही परम धर्म है, विश्व शांति का कारण है, स्वपर कल्याण की आधार शिला है। अहिंसा किसी सम्प्रदाय, पंथ, आम्नाय, संस्था द्वारा उद्घोषित धर्म नहीं है, अपितु सार्वजनीन, सार्वभौमिक, प्राणी मात्र के कल्याण करने में सक्षम, प्रत्येक तीर्थंकर, परमात्मा, ऋषि, मुनि संतों व आचार्यों भगवंतों द्वारा प्रतिपादित है। जिस प्रकार तुम्हें अपने प्राण प्रिय हैं उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी को अपने प्राण प्रिय हैं। कोई भी अपने प्राणों के बदले तीन लोकों की सम्पत्ति भी लेना स्वीकार नहीं करेगा। इससे सिद्ध होता है कि अहिंसा की कीमत तीन लोक की विभूति से भी अधिक है। जहाँ–जहाँ हिंसा विद्यमान है वहाँ वहाँ अशांति, दुःख, कलह, क्रूरताएं, तानाशाही, भुखमरी, अकाल, महामारी, वैमनस्यताएँ, लड़ाई–झगड़े, संक्लेशताएं एवं अराजकता का ही साम्राज्य होता है। हिंसा का ताण्डव नृत्य प्रलय का ही उद्घोषक है वहाँ निर्भयता नहीं रह सकती। आगम में हिंसा के मुख्य 4 भेद किये हैं–

1. **संकल्पी हिंसा–** संकल्प पूर्वक जीवघात करना संकल्पी हिंसा है।

2. **उद्योगी हिंसा–** व्यापार, उद्योग धन्धों के माध्यम से की हुई हिंसा उद्योगी हिंसा है।

3. **आरंभी हिंसा–** रसोई बनाना, झाड़ू लगाना, पानी भरना, वस्त्रों को धोना, गृह सफाई करना, चक्की चलाना इत्यादि आरंभ करने में जो हिंसा होती है उसे आरंभी हिंसा कहते हैं।

4. **विरोधी हिंसा–** सच्चे देव, शास्त्र, गुरु, धर्म, परिवार साधर्मी जनों की रक्षा करने में जो हिंसा होती है वह विरोधी हिंसा है। श्रावक को संकल्पी हिंसा का त्याग तो अनिवार्य ही है तथा यथाशक्य उद्योगी, आंरभी, विरोधी हिंसा का भी त्याग करना चाहिए। जगज्जननी, विश्व कल्याणी, उस परम पुनीता अहिंसा की शरण में ही आत्म कल्याण के इच्छुक को आ जाना चाहिए।

धर्म के बारे में विशेष जानकारी लेखक की "धर्म क्या? क्यों? कैसे?" लघु कृति में देखें।

जिज्ञासा 29. पात्र किसे कहते हैं? कितने भेद हैं और कौन–कौन से हैं? बताने की कृपा करें।

समाधान : जिसमें पात्रता होती है, उसे पात्र कहते हैं, अथवा पा = पापों से त्र = त्राता बनकर रक्षा करे। दूसरी प्रकार पा = पार करे त्र = त्रसित जनों को, संसार के त्रास से त्र = तिरायें। अतः संसार सागर से पार करने वाले दुःखों के हर्ता, आत्म रक्षकों को पात्र कहते हैं। पात्रों के सामान्यतया तीन भेद होते हैं –

1. सत्पात्र 2. अपात्र 3. कुपात्र

1. सत्पात्र – सत् या समीचीनता से युक्त (सम्यक् ''दर्शनज्ञानचारित्र'' से युक्त, संसार शरीर भोगों से विरक्त, पापों से भयभीत, धर्म, धर्मात्मा, धर्म के फलों में हर्ष भाव को धारण करने वाले स्वपर कल्याण में निरत, सच्चे देव शास्त्र गुरु के आज्ञानुवर्ती महानुभाव ही सत्पात्र या सुपात्र कहलाते हैं। कभी–कभी सत्पात्र को पात्र भी कह दिया जाता है। सत्पात्र ही समीचीन गुणों से युक्त ऐसे भाजन या नौका हैं जो स्वयं तिरते हैं एवं आश्रयवान/शरणार्थी को भी भवदधि पार कराते हैं।

2. अपात्र – अर्थ स्पष्ट ही है, जिनमें पात्रता नहीं होती वे अपात्र कहलाते हैं अर्थात् जो रत्नत्रय से रहित, मिथ्या दर्शन, अज्ञान, मोह से संयुक्त, धर्म के प्रति उदासीन, निजात्म कल्याण से रहित, भव भोगों में, इन्द्रिय विषय व कषायों में प्रवृत्तमान हो रहे हैं, वे सभी अपात्र कहलाते हैं। अपात्रों को दान देने से संसार सागर से पार नहीं हो सकते। किंचित पुण्य व किंचित पापास्रव ही होता है। अतः अपात्र–दान भववर्धक ही है जैसे– चिड़ियों को दाना डालना, चीटिंयों को आटा डालना, बंदरों को खिलाना, भिखारियों को दान देना, लोक व्यवहार में लौकिक कार्य हेतु दान देना, शादी विवाह में दान देना इत्यादि। यह दान फूटे बर्तन में पानी भरने के समान विशेष लाभदायक नहीं है।

3. कुपात्र – कु = खोटे, पात्र = भाजन

जैसे – अपवित्र बर्तन में पवित्र वस्तु रखने से वह वस्तु भी अपवित्र हो जाती है उसी प्रकार कुपात्र–दान प्रचुर मात्रा में पापास्रव ही कराने वाला है। जो मिथ्यात्व, अज्ञानता, असंयम का पोषण करने वाले, हिंसा में धर्म मानने वाले, कुशील सेवन करने वाले, परिग्रह से सहित, पापों व इन्द्रियों के विषय में स्वयं प्रवृत्त होकर दूसरों को भी प्रवृत्त कराने वाले, कषायों की तीव्रता से युक्त, अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करने वाले, स्त्री पुत्र आदि में मोह रखने वाले, मिथ्या चारित्र को ही समीचीन धर्म मानने वाले, कुदेव–कुधर्म–कुगुरु की प्रवृत्ति करने व कराने वाले, मद्य–माँस–मधु जैसे निंद्य पदार्थों का सेवन करने वाले, दूसरों के धन को दान में प्राप्त करके उससे पाप कर्म (जुआ खेलना, माँस खाना, शराब पीना, गरीबों पर अत्याचार करना, कुदेवाश्रय बनाना इत्यादि कार्यों) में रत रहते हैं, वे कुपात्र कहलाते हैं कुपात्रों को दान देने से प्रचुर मात्रा में पापास्रव ही होता है। अनेकों ऋषि, मुनि, आचार्य–भगवंतों ने कहा है कि भले ही अपने धन को किसी कुंए में डाल देना किन्तु कुपात्रों को दान नहीं देना क्योंकि कुपात्रों को दान देने से वे जो भी पाप कार्य करेंगे उसका षडांश पाप दाता को भी लगेगा। यदि उत्तम सुपात्रों को दान दिया जाता है तो उसका षडांश पुण्य भी दाता को मिलता है।

जिज्ञासा 30. सत्पात्रों के कितने भेद हैं और कौन–कौन से हैं? समझाने की कृपा करें।

समाधान : सत्पात्रों के सामान्यतया तीन भेद होते हैं –

1. उत्तम पात्र, 2. मध्यम पात्र, 3. जघन्य पात्र ।

1. **उत्तम पात्र–** उत्तम या श्रेष्ठ पात्र वे कहलाते हैं जो विषय कषाय आरंभ परिग्रह से रहित होते हैं, ज्ञान ध्यान तप में लीन रहते हुए स्वपर कल्याण में संलग्न होते हैं वे सभी दिगम्बर संत उत्तम पात्र कहलाते हैं। इन उत्तम पात्रों के भी तीन भेद किये जा सकते हैं –

(1) **उत्तमोत्तम पात्र–** 4 ज्ञान के धारी, (केवलज्ञान रूपी ऋद्धि से रहित बाकी) 63 ऋद्धियों से सहित तीर्थंकर भगवान सर्वश्रेष्ठ/उत्तमोत्तम/सर्वोत्कृष्ट पात्र हैं।

(2) **उत्तम मध्यम पात्र–** 4 ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय ज्ञान) के धारी, यथासंभव ऋद्धियों से सहित गणधर परमेष्ठी, श्रुत केवली इत्यादि वर्धमान चारित्र युक्त मुनिराज उत्तम मध्यम पात्र हैं।

(3) **उत्तम जघन्य पात्र–** हीन संहनन से युक्त, उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्व सहित, 28, 25, 36 मूलगुणों से युक्त, विषय, कषाय, आरंभ, परिग्रह से रहित, ज्ञान, ध्यान तप में लीन, वर्तमान कालीन आचार्य– उपाध्याय–साधु परमेष्ठी उत्तम जघन्य पात्र हैं। कलिकाल में ये ही तीर्थंकर, श्रुत केवली या गणधर के समान पूज्य हैं। आज इस कलिकाल में साक्षात् तीर्थंकर, गणधर, श्रुतकेवली या ऋद्धि सम्पन्न ऋषियों का अभाव है अतः अपनी उत्कृष्ट भावनाओं से आज के यथार्थ संतों में ही उक्त कल्पना करके, उनकी पूजा, भक्ति उपासना करके, आहारादि दान देकर सातिशय पुण्यार्जन करना चाहिए।

28 मूलगुणों का विशेष कथन लेखक की "दिगम्बरत्व क्या? क्यों? कैसे?" नामक कृति में देखें।

2. **मध्यम पात्र–** सम्यक् दर्शन, ज्ञान, देश चारित्र या उपचार से सकल चारित्र से युक्त, संसार शरीर भोगों से उदासीन, सम्यक् ज्ञान के अध्ययन व अध्यापन में निरत, धर्म–धर्म के फल में, एवं धर्मात्माओं में अनुरक्त, पंचपरमेष्ठी में आसक्त, 2 प्रतिमाधारी से आर्यिका जी तक सभी पात्र मध्यम पात्र कहलाते हैं। इन मध्यम पात्रों के भी तीन भेद किये जा सकते हैं –

(1) मध्यमोत्तम पात्र

(2) मध्यम मध्यम पात्र

(3) मध्यम जघन्य पात्र

(1) **मध्यम उत्तम पात्र–** यथाशक्य 28 मूलगुणों (5 महाव्रत, 5 समिति, 5 इन्द्रिय निरोध, षड् आवश्यक व शेष सात गुणों) से सहित, उपचार से महाव्रती, रत्नत्रय से संयुक्त, ज्ञान–ध्यान–तप में संलग्न, उत्तम क्षमा मार्दव, आर्जव, शौचादि भावों से सहित,

विषय कषाय आरंभ परिग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, कलह, मात्सर्य आदि भावों से रहित, निज–पर कल्याण में तत्पर, सरलता, सहजता, वात्सल्य, ममता एवं भद्रता की मूर्ति स्वरूप आर्यिकाएं मध्यमोत्तम पात्र हैं।

(2) **मध्यम मध्यम पात्र –** सम्यक् दर्शन ज्ञान व देश चारित्र (श्रावक के 12 व्रतों (5 अणुव्रत + 4 शिक्षाव्रत + 3 गुणव्रत) से सहित एवं 11 प्रतिमाओं (दर्शन प्रतिमा, व्रतप्रतिमा, सामायिक प्रतिमा, प्रोषधोपवास प्रतिमा, सचित्त त्याग प्रतिमा, रात्रि भुक्ति या दिवा मैथुन त्याग प्रतिमा, ब्रह्मचर्य प्रतिमा, आरंभ त्याग प्रतिमा, परिग्रह त्याग प्रतिमा, अनुमति त्याग प्रतिमा, उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा) का यथाशक्य निरतिचार पालन करने वाले, सरल हृदय, स्वपर हित में यथाशक्य अनुरक्त उत्कृष्ट श्रावक (ऐलक जी व क्षुल्लक जी) मध्यम मध्यम पात्र कहलाते हैं।

श्रावक के चारित्र का विशेष कथन लेखक की 'उपासकाचरण' नामक लघु एवं विशद् बोधप्रद कृति में देखें।

(3) **मध्यम जघन्य पात्र–** सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, देश चारित्र से युक्त (2 प्रतिमा से लेकर 10 प्रतिमा तक) श्रावक के 12 व्रतों का व यथाशक्य 2 से 10 प्रतिमाओं का निरतिचार पालन करने वाला, संसार–शरीर–भोगों से विरक्त, पंचपरमेष्ठी का अनन्य भक्त, पापों से भयभीत, निजात्म कल्याण में परमासक्त, सुधी देशव्रती श्रावक श्राविकाएं मध्यम जघन्य पात्र हैं।

3. जघन्य पात्र– सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान से सहित चारित्र से रहित किन्तु संसार–शरीर–भोगों से विरक्त, वैराग्य से परिपूर्ण, चारित्र के लिए आतुर, षड् आवश्यक कर्त्तव्यों का पालन करने में संलग्न, पंच परमेष्ठी के परमोपासक, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म के लिए सदैव प्राणपन्न से समर्पित रहने वाले संवेगी श्रावक जघन्य पात्र होते हैं।

इनके भी 3 भेद किये जा सकते हैं –

(1) **जघन्योत्तम पात्र–** अष्ट अंगों से सहित, 25 दोषों से रहित, सम्यक्त्व का यथार्थ परिपालन करने वाले, सम्यक् ज्ञान के जिज्ञासु, देव–पूजा–गुरु उपासना अदि षटावश्यक कर्तव्यों में संलग्न, सम्यक् चारित्र को ग्रहण करने में आतुर, यथाशक्य देशव्रतों का परिपालन करने वाले, सप्त व्यसनों से रहित, अष्ट मूलगुणों से सहित श्रावक के 12 व्रतों के अभ्यासी, अभक्ष्य–अन्याय–अनीति के परित्यागी सुधी श्रावक जघन्योत्तम पात्र कहलाते हैं।

(2) **जघन्य मध्यम पात्र–** भद्र परिणामी, मंद कषायवान, सम्यक्त्व सहित, सप्त व्यसन के त्यागी, अष्ट मूलगुणों से सहित, षड् आवश्यक कर्त्तव्यों से संयुक्त, अभक्ष्य आदि के त्यागी संवेगी सुधी श्रावक जिनके लिए पंच परमेष्ठी ही शरणभूत हैं, वे सुधी

श्रावक जघन्य मध्यम पात्र हैं।

(3) **जघन्य जघन्य पात्र–** सच्चे देव–शास्त्र–गुरु–जिनधर्म के दृढ़ श्रद्धानी, यथाशक्य जिनागमानुसार जैनत्व के आचरण से सहित, पंचपरमेष्ठी के उपासक, अभक्ष्य–अनीति, अन्याय के त्यागी, संतोषी भेद विज्ञानी सुधी श्रावक जघन्य जघन्य पात्र है। किन्ही आचार्यों ने सम्यक्त्व से रहित किन्तु व्रतों का पालन करने वाले पापों से विरक्त श्रावकों को भी जघन्य पात्रों में शामिल किया है।

इन सत्पात्रों के मूलगुणों व उत्तरगुणों का वर्णन अन्य शास्त्रों में देखें। यहाँ ग्रन्थ विस्तार के भय से नहीं लिखे।

जिज्ञासा 31. आपने पात्रों के भेद कहे किन्तु ये सत्पात्र आहार ग्रहण क्यों करते हैं? कृपया उनके आहार ग्रहण करने के कारणों को बताने की कृपा करें।

समाधान : बिना आहार के शरीर की स्थिति नहीं रह सकती बिना शरीर के संयम की साधना, पंच परमेष्ठी की आराधना, धर्म की प्रभावना आत्मध्यान एवं तपों में प्रवृत्ति नहीं हो सकती। अतः पात्रों को आहार ग्रहण करना पड़ता है। वे तो यह चाहते हैं कि हमें कभी आहार नहीं लेना पड़े, अपने स्वभाव में ही सदैव लीन रहें किन्तु हीन संहनन होने से बिना आहार के दीर्घकाल तक जीवित रहकर निराकुलता से संयम की साधना नहीं हो सकती।

दूसरा मुख्य कारण यह है कि श्रावकों के पाप प्रक्षालन व सातिशय पुण्यास्रव का यह एक हेतु है। आहारादि दान से श्रावक अपना तन, मन, धन, वचन, जीवन सभी कुछ धान्य कर लेता है। उत्तम पात्रों के चरण श्रावकों के घर में पड़ जाते हैं तो उनके वे घर स्वर्ग के समान सुखदायी हो जाते हैं। जिस घर में उत्तम पात्रों (सत्पात्रों) के चरण न पड़ें तो उस घर को आचार्यों ने श्मशान या पशुओं की गुफा या पक्षियों के घोंसलें के समान कहा है। अतः सत्पात्र का आहारादि ग्रहण करना स्व–पर कल्याण का हेतु है। वे साधक आहार तन पोषण के लिए नहीं धर्म/संयम के पोषण के उद्देश्य से ही लेते हैं। साधकों के आहार ग्रहण करने के कारण निम्नांकित हैं –

1. **क्षुधा वेदना को शमन करने हेतु –** क्षुधा वेदना के तीव्र उदय होने पर साधक निराकुलता से धर्म ध्यान नहीं कर सकेंगे। क्षुधा की तीव्र वेदना आर्त्त ध्यान का कारण बनेगी, विशुद्धि की संहारक व संक्लेशिता की उत्पादक होगी। अतः साधक क्षुधा शमन हेतु भी आहार लेते हैं।

2. **वैय्यावृत्ति करने के लिए –** बिना आहार के शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है जिससे अनेक रोगों का उत्पन्न होना भी संभव है। उस अवस्था में अन्य साधकों की व स्वयं की संयम स्थिरता करने वाली वात्सल्य व विनय की सूचक वैय्यावृत्ति नहीं कर सकेंगे। वैय्यावृत्ति के अभाव में स्व एवं पर के संयम का पालन करना अत्यन्त कठिन हो

जाएगा। अतः स्व पर की वैय्यावृत्ति के उद्देश्य से भी साधक आहार ग्रहण करते हैं।

3. षटावश्यक कर्त्तव्यों के पालन हेतु– साधक या श्रावक की षड् आवश्यक क्रियाएं (श्रमण की आवश्यक क्रियाएं–देव वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग, समता (किन्ही आचार्यों ने प्रत्याख्यान के स्थान पर स्वाध्याय को ग्रहण किया है) एवं श्रावक की षड् आवश्यक क्रियाएं देवपूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, दान इत्यादि क्रियाएं) बिना आहार ग्रहण किये दीर्घकाल तक इनका परिपालन करना अशक्य हो जाएगा। आवश्यक क्रियाएं श्रमण एवं श्रावक की अवश्य की जाने वाली क्रियाएं हैं। इनके बिना न तो श्रमण श्रमण है और न ही श्रावक श्रावक कहलाने का अधिकारी होता है। ये षड्आवश्यक क्रियाएं सर्वकर्म निर्मूलन करने में समर्थ हैं। ये कभी किसी के वश में नहीं होती, अतः अवश है। और 'अवश' को यानि मोक्ष को देने में कारण है अतः श्रमणादि इन आवश्यक क्रियाओं का परिपालन करने हेतु भी आहार ग्रहण करते हैं।

4. संयम साधना के लिए– जीवन पर्यन्त तक समीचीन नियमों का पालन करना या सम्यक्त्व पूर्वक संयम का परिपालन करना, अथवा यम (काल+मृत्यु) का संहार–नाश करने के लिए नियम–व्रतादि का परिपालन करना संयम कहलाता है। इसके मुख्य 2 भेद हैं –

1. प्राणि संयम 2. इन्द्रिय संयम ।

1. षड् कायिक (5 स्थावर + 1 त्रस कायिक) जीवों की रक्षा करना प्राणि संयम है।

2. पांचों इन्द्रियों व मन को वश में करना इन्द्रिय संयम है। अथवा 13 प्रकार के संयम का परिपालन करना।

बिना आहार के सुदीर्घ काल तक संयम का परिपालन करना असंभव है अतः साधक के लिए आहार लेना आवश्यक है।

5. प्राणों की रक्षा– बिना आहार के असमय में ही मेरे प्राणों का वियोग हो जाएगा, मेरी विशुद्धि का व संयम का भी नाश हो जाएगा, मैं संक्लेशता के साथ मृत्यु को प्राप्त होऊँगा। अपने प्राणों की रक्षा व दूसरे के प्राणों की रक्षा बिना आहार ग्रहण किये सुचिर काल तक अति दुर्लभ है अतः साधक जन स्व–पर के प्राणों की रक्षा हेतु भी शुद्ध प्रासुक आहार ग्रहण करते हैं।

6. धर्म का परिपालन करने हेतु– बिना आहार ग्रहण किये साधक पुरुष द्वारा उत्तम क्षमादि 10 धर्म (उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य) का, रत्नत्रय रूप धर्म का, उत्तम अहिंसादि 5 धर्मों का परिपालन करना अशक्य हो जाएगा अतः साधक पुरुष सुदीर्घ काल तक धर्म का परिपालन करने

हेतु आहार ग्रहण करते हैं।

उत्तम क्षमादि धर्मों का विशेष वर्णन लेखक की अन्य कृति 'दशामृत' में देखें।

जिज्ञासा 32. आपने आहार ग्रहण करने के कारण बताये किन्तु साधक आहार त्याग क्यों करते हैं? उन कारणों को भी बताएं, आपकी महती कृपा होगी।

समाधान : कभी–कभी साधक पुरुष कुछ समय के लिए अथवा जीवन पर्यन्त के लिए भी आहार जल का त्याग कर देते हैं। वे साधक नव कोटि से, नवधा भक्ति पूर्वक दिया गया आहार ही ग्रहण करते हैं अन्यथा ग्रहण नहीं करते हैं। आहार त्याग करने के निम्नांकित कारण हैं –

1. आतंक होने पर
2. उपसर्ग आने पर
3. ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा हेतु
4. प्राणी दया हेतु
5. तप की वृद्धि के लिए
6. संन्यास के लिये

1. आतंक होने पर– आकस्मिक कोई ऐसा रोग हो जाए जो कि मारणान्तिक पीड़ा देने वाला हो। आधि, व्याधि, महामारी, अकाल, व प्रलयकाल आने पर साधक जन नियम पूर्वक निश्चित समय के लिए आहार का त्याग करके नियम सल्लेखना ग्रहण कर लेते हैं अर्थात् जब तक उक्त रोगादि जन्य पीड़ा है तब तक के लिए आहार का त्याग। कषायों को शरीर को कृश करना एवं शरीर से ममत्व का त्याग करते हुए कायोत्सर्ग में संलग्न रहना नियम सल्लेखना कहलाता है।

2. उपसर्ग आने पर– पूर्व भव या इसी भव के बैरी देव, विद्याधर तिर्यंच या भूमि गोचरीय मनुष्यों द्वारा उपसर्ग किये जाने पर या अचेतन उपसर्ग होने पर जैसे– दीवाल का ऊपर गिर पड़ना, स्वयं जमीन पर पैर फिसलकर गिर पड़ना जिससे बचने की उम्मीद न हो। दाह, उल्कापात, वज्रपात इत्यादि चेतनाचेतन उपसर्गों के आने पर भी संयमी साधक–जन नियम सल्लेखना ग्रहण करते हुए आहार का त्याग कर देते हैं।

3. ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा हेतु– आहार करने पर शरीर में सप्तधातु या उपधातु का निर्माण होता है। कभी–कभी गरिष्ठ या इष्ट आहार ग्रहण करने पर साधना के लिए आवश्यक शक्ति से भी अधिक शक्ति का संचय हो जाता है जिससे व्रतों में निर्मलता न आकर वह शक्ति प्रमाद, अतिनिद्रा, इन्द्रिय विषयों में आसक्ति के परिणामों की एवं विकारोत्पादक हो जाती है, जिससे ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का निरतिचार पालन नहीं हो पाता। अतः साधक पुरुष ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का निरतिचार परिपालन करने के उद्देश्य

से वीर्य का उर्ध्वारोहण करने हेतु तप संयम व ध्यान सिद्धि के लिए भी आहार का त्याग कर देते हैं।

4. प्राणी दया हेतु– यदि आहार ग्रहण के प्रसंग में जीव हिंसा का प्रसंग आता है कि मेरे निमित्त से यहाँ बहु जीवों का घात होगा सोचकर भी साधक महापुरुष आहार का त्याग कर देते हैं क्योंकि उनके लिए आहार से पहले संयम इष्ट हैं अतः जहाँ संयम की रक्षा आहार त्याग से होती है प्राणी दया हेतु भी साधु पुरुष आहार का परित्याग कर देते हैं।

5. तप की वृद्धि के लिए– 12 प्रकार के तपों में 'अनशन' नामक प्रथम बहिरंग तप है उसकी सिद्धि के लिए एवं अन्य 11 तपों की वृद्धि के लिए भी साधक पुरुष आहार का त्याग कर देते हैं।

6. संन्यास के लिए – संन्यास काल के समय अर्थात् अति वृद्धत्व आने पर, जंघाबल घट जाने से जिससे उठने बैठने की शक्ति क्षीण हो गई हो, दुस्साध्य रोग से पीड़ित होने पर, इन्द्रियों की विकलता हो जाने पर, संयम की हानि का प्रसंग उपस्थित होने पर, षटावश्यक कर्त्तव्यों का पालन करने की सामर्थ्य न रहने पर, साधक पुरुष/मुनिजन–संन्यास/सल्लेखना को अंगीकार कर लेते हैं। उस समय वे मुनि पुंगव आहार का त्याग करके, कषाय व शरीर को कृश करते हुए शरीर का परित्याग करते हैं।

साधक पुरुष आहार शरीर को पुष्ट रखने के लिए, स्वाद के लिए, शरीर में कांति लाने के लिए, आयु वृद्धि के लिए, दूसरों को सताने के लिए, बल प्राप्त करने हेतु नहीं अपितु सम्यग्ज्ञान की वृद्धि के लिए, संयम की निर्मलता के लिए, ध्यान सिद्धि के लिए, तपों की वृद्धि स्वरूप इच्छा निरोध के लिए आहार ग्रहण करते हैं।

जिज्ञासा 33. आपने अभी कहा था कि साधक पुरुष/मुनि पुंगव नव कोटि से विशुद्ध आहार ग्रहण करते हैं वे नव कोटियाँ कौन–कौन सी हैं? समझाने की कृपा करें।

समाधान : मुनिराज नवकोटि से विशुद्ध, 14 मल दोष, 46 दोष अधः कर्म नामक महादोष से रहित होकर 32 अंतरायों को टालते हुए आहार ग्रहण करते हैं। नवकोटि का अर्थ है–नव प्रकार की शुद्धि।

मन से आहार सम्बन्धी कृत–कारित–अनुमोदना का त्याग

वचन से कृत–कारित–अनुमोदना का त्याग

शरीर से कृत–कारित–अनुमोदना का त्याग

ये नवकोटि कहलाती हैं अर्थात् वे श्रमण मन–वचन–काय से न आहार बनाते हैं न बनवाते हैं न बनवाने की अनुमोदना करते हैं, वे नव कोटि से परिशुद्ध आहार ग्रहण करते हैं।

जिज्ञासा 34. आपने कहा कि मुनिराज 46 दोषों को टालकर आहार ग्रहण करते हैं, वे 46 दोष कौन–कौन से हैं? बताने की कृपा करें।

समाधान : 16 उद्गम दोष (जिनका कथन किया जा चुका है) + 16 उत्पादन दोष + 10 एषणा दोष + 1 संयोजना दोष + 1 अप्रमाण दोष + 1 धूम दोष + अंगार दोष = 46 दोष हैं।

इनमें से अब यहाँ 16 उत्पादन दोषों का कथन करते हैं –

1. धात्री दोष, 2. दूत दोष, 3. निमित्त दोष, 4. आजीव दोष, 5. वनीपक दोष, 6. चिकित्सा दोष, 7. क्रोध दोष, 8. मान दोष, 9. माया दोष, 10. लोभ दोष, 11. पूर्व संस्तुति दोष, 12. पश्चात् संस्तुति दोष, 13. विद्या दोष, 14. मंत्र दोष, 15. चूर्ण दोष, 16. मूलकर्म दोष ।

1. धात्री दोष – मार्जन धात्री (बालकों का पालन–पोषण करने वाली माँ) मण्डन धात्री (बालकों को आभूषणों से श्रृंगारित करने वाली माँ) क्रीडन धात्री (बालकों को क्रीड़ाएं कराने वाली माँ) क्षीर धात्री (बालकों को दूध पिलाने वाली, स्तनपान कराने वाली माँ) अम्ब धात्री (सुलाने वाली, जन्म देने वाली माँ) ये 5 धात्री हैं। इन पांच धात्री कर्मों से उत्पन्न कराया गया आहार धात्री दोष से दूषित कहलाता है। अतः मुनिराज धात्री जैसी क्रियाएं व इन कार्यों का उपदेश देकर आहार हेतु प्रभावित करके आहार ग्रहण नहीं करते।

2. दूत दोष – श्रावकों का संदेश एक ग्राम से दूसरे ग्राम में, नगर में, देश में या विदेश में भेजकर अर्थात् दूत या संदेश वाहक का कार्य कर दाता को प्रभावित कर आहार ग्रहण करना दूत दोष कहलाता है। इस प्रकार का दूतों जैसा कार्य साधक पुरुषों को नहीं करना चाहिए।

3. निमित्त दोष – व्यंजन, अंग, स्वर, छिन्न, भूमि, अंतरिक्ष, लक्षण, स्वप्न ये 8 प्रकार का निमित्त ज्ञान होता है –

क. व्यंजन निमित्त ज्ञान – किसी पुरुष के शरीर पर स्थित तिल या मसा आदि देखकर जो शुभ अशुभ जाना जाता है। वह व्यंजन निमित्त ज्ञान है।

ख. अंग – किसी पुरुष के हाथ, पैर, ग्रीवा, सिर, वक्षस्थल आदि देखकर शुभ अशुभ जानना अंग निमित्त ज्ञान है।

ग. स्वर – किसी पुरुष या अन्य प्राणी के शब्दों को सुनकर शुभ अशुभ जानना स्वर निमित्त ज्ञान है।

घ. छिन्न– खड्गादि शस्त्र के प्रहार से छिन्न शरीर या वस्त्रादि को छिन्न (कटा या फटा) देखकर शुभाशुभ को जानना छिन्न निमित्त ज्ञान है।

ङ. भूमि– भूमि का रंग, सुगन्ध व मिट्टी का स्वाद, कठोरता–कोमलता, हल्का–भारीपन, चिकनाई–रूखापन, ठण्डी व ऊष्णता को जानकर वहाँ रहने वालों का शुभाशुभ जानना भौमिक निमित्त ज्ञान है।

च. अंतरिक्ष– आकाश में होने वाले ग्रह युद्ध, ग्रहों का अस्तोदय होना, ग्रहों की वक्री व सरल चाल देखना, उल्कापात, आकाश में विभिन्न रंगों का व्याप्त होना, इन्द्र ध ानुष आदि का उदय, ग्रहों का निर्घात, नक्षत्रों का उदय, अस्त आदि के निमित्त से प्रजा का शुभ अशुभ जानना अंतरिक्ष निमित्त ज्ञान है।

छ. लक्षण – पुरुष के शरीर में स्थित शंख, पद्म, सरोवर, धनुष, नन्द्यावर्त, चक्र, मीन, गज, अश्व, मृगेन्द्र, सारंग, गदा इत्यादि लक्षणों को देखकर पुरुषों का शुभाशुभ जानना लक्षण निमित्त ज्ञान है।

ज. स्वप्न – सोते समय स्वप्न में हाथी, घोड़ा, सागर, बैल, सूर्य, चन्द्रमा, भैंसा, नाग, भूत–प्रेत, जिनबिम्ब, विधवा कन्या, जलावगाहन, गगन विहार, अग्नि, धनसम्पत्ति, मुंडन, देव विमान, शंख, हल इत्यादि स्वप्नों के माध्यम से शुभाशुभ जानना स्वप्न निमित्त ज्ञान है।

इन आठ प्रकार के निमित्त ज्ञान से श्रावकों को शुभाशुभ बताकर उन्हें प्रभावित कर जिससे वे मुझे आहार दें, यदि इस प्रकार से उत्पन्न कराया हुआ आहार मुनिगण लेते हैं तो उन्हें निमित्त दोष लगता हैं अतः आहार के उद्देश्य से कभी नहीं बतायें।

4. आजीव दोष – जाति, कुल, शिल्प, तप, ईश्वरता ये आजीव हैं इनसे उत्पन्न कराया हुआ आहार आजीव दोष से युक्त कहलाता है अर्थात् कोई साधु अपनी जाति कुल का निर्देश करके, शिल्प कर्म, तपश्चरण या ईश्वरता को बतलाकर यदि आजीविका करता है अर्थात् इस प्रकार प्रभावित कर दाता से आहार उत्पन्न कराकर यदि आहार ग्रहण करते हैं तो उन्हें आजीव नामक दोष लगता है।

5. वनीपक दोष – दाता के पूछे जाने पर कि कुत्ता, बिल्ली, बंदर, चूहा, दीन–दरिद्रियों भिखारियों, माँसाहारी मानवों, मेहमान, पाखण्डियों, कौवा आदि पक्षियों को भोजनादि दान देने से पुण्य होता है या नहीं? तो दाता के अनुकूल बोल देना कि हाँ! पुण्य होता है जिससे दाता प्रसन्न होकर आहार दान देता है और मुनिराज यदि उस आहार को ग्रहण करते हैं तो उन्हें 'वनीपक' नामक दोष लगता है। मुनिराज को कभी दाता के अनुकूल नहीं अपितु आगम के अनुकूल ही बोलना चाहिए।

6. चिकित्सा दोष – कौमार चिकित्सा, तनु चिकित्सा, रसायन चिकित्सा, विष चिकित्सा, भूत चिकित्सा, छार तन्त्र चिकित्सा, शालाकिक चिकित्सा, शल्य चिकित्सा –

इन 8 प्रकार की चिकित्सा करके, मुनि गृहस्थ का उपचार करके उसे प्रभावित कर आहार ग्रहण करते हैं तो उन्हें 'चिकित्सा' नामक दोष लगता है क्योंकि इन कार्यों में सावद्यता पायी जा सकती है अतः आहार हेतु ये कार्य साधु को कदापि नहीं करने चाहिए।

7. क्रोध दोष – यदि मुनिराज श्रावकों को डाँट–फटकार कर, क्रोधित होकर आहार उत्पन्न कराते हैं व उसे ग्रहण करते हैं तो 'क्रोध' नामक दोष लगता है।

8. मान दोष – यदि मुनि पुंगव अपने मान की पुष्टि करते हुए गर्व से युक्त होकर श्रावकों से आहार उत्पन्न कराते हैं व उसे ग्रहण करते हैं तो वह 'मान' दोष से दूषित आहार कहलाता है।

9. माया दोष – यदि वे श्रमणराज मायाचारी करके, कुटिल भावों से युक्त होकर, छलकपट से श्रावकों से आहार बनवाकर उसे ग्रहण करते हैं तो उस आहार को लेने से उन्हें 'माया' नामक दोष लगता है।

10. लोभ दोष – यदि वे मुनिराज श्रावकों को कोई लोभ दिखाकर आहार ग्रहण करते हैं तो उन्हें 'लोभ' नाम का दोष लगता है।

11. पूर्व संस्तुति दोष – ''तुम तो श्रेष्ठ दानपति हो, तुम्हारी कीर्ति जग विख्यात है, यशस्वी हो। आपका जैसा दाता, मुनि भक्त, धार्मिक कोई हो ही नहीं सकता। आपके पुण्य का क्या कहना?'' इत्यादि प्रकार के वचन कहना जिससे दाता आहार देने में प्रवृत्त हो। इस प्रकार उत्पन्न कराकर ग्रहण किया गया आहार 'पूर्व संस्तुति' दोष से दूषित कहलाता है।

12. पश्चात् संस्तुति दोष – आहार ग्रहण करने के बाद दाता की प्रशंसा करना कि तुम श्रेष्ठ दाता हो, तुम्हारे यहाँ जैसा आहार कहीं नहीं बनता, तुम्हारा यश लोक में व्याप्त है, इत्यादि वचन बोलना इस प्रकार दाता को प्रभावित कर उत्पन्न कराया गया आहार ग्रहण करना 'पश्चात् संस्तुति' दोष है।

13. विद्या दोष – जो साधित सिद्ध है वह विद्या है यदि मुनिराज श्रावक को विद्या देने की आशा देकर पुनः आहार ग्रहण करते हैं तो 'विद्या' नामक दोष प्राप्त होता है।

14. मंत्र दोष – ''मैं तुम्हें मंत्र दे दूँगा'' ऐसी आशा प्रदान करने की युक्ति से या उस मंत्र के माहात्म्य से जो जीते हैं अर्थात् श्रावक से आहार उत्पन्न कराकर लेते हैं तो उन्हें 'मंत्र' नामक दोष लगता है। अपने आहार के उद्देश्य से श्रावकों को मंत्र देना, साधु के लिए यह उचित नहीं है।

15. चूर्ण दोष – चक्षु को निर्मल करने के लिए जो सुरमा या अंजन आदि होता है वह अंजन चूर्ण है। जिस चूर्ण से तिलक या पत्रवल्ली आदि की जाती है वह भूषण चूर्ण है। शरीर में दीप्ति पैदा करने योग्य चूर्ण शरीर शोभा चूर्ण है इत्यादि चूर्णों को गृहस्थों को

देकर उन्हें आहार हेतु प्रभावित करके आहार ग्रहण करना 'चूर्ण' नामक दोष कहलाता है। साधु पुरुषों के लिए आहार हेतु चूर्ण आदि औषधि देना या बताना उचित नहीं है।

16. मूलकर्म दोष – जो वश में नहीं हैं उनका वशीकरण करना और जिनका आपस में वियोग हो रहा है उनका संयोग करा देना यह 'मूलकर्म' नामक दोष है। इस मूलकर्म के द्वारा आहार उत्पन्न कराकर जो मुनि आहार लेते हैं उनके मूलकर्म नाम का दोष होता है।

इस प्रकार से '16 उत्पादन दोष' कहे, अब एषणा समिति के 10 दोषों को कहते हैं –

एषणा समिति के 10 दोष –

1. शंकित दोष, 2. भ्रक्षित दोष, 3. निक्षिप्त दोष, 4. पिहित दोष, 5. संव्यवहार दोष, 6. दायक दोष, 7. उन्मिश्र दोष, 8. अपरिणत दोष, 9. लिप्त दोष, 10. परित्यजन दोष।

1. शंकित दोष – शंका से उत्पन्न हुआ आहार शंकित है। क्या यह आहार अधः कर्म से बना हुआ है? यह आहार मेरे लेने योग्य है अथवा नहीं? ऐसी शंका करके जो मुनि आहार ग्रहण करते हैं, उनके शंकित नामक दोष लगता है।

2. भ्रक्षित दोष– घी–तेल आदि के चिकने हाथ से या चिकने हुए बर्तन से कलछी–चम्मच से दिया गया आहार–आदिक है उसे मुनिराज यदि ग्रहण करते हैं तो उन्हें 'भ्रक्षित' नामक दोष लगता है। यह दोष भी मुनिराज को त्याज्य है क्योंकि इससे सम्मूर्च्छन छोटे–छोटे जीवों की विराधना हो सकती हैं अर्थात् चिकने (स्निग्धता युक्त) हाथ या बर्तन से चिपककर जीवों की विराधना, बर्तन गिरना संभव है।

3. निक्षिप्त दोष – 'सचित्त पृथ्वी, सचित्त जल, अग्नि, हरितकाय वनस्पति, बीज काय, त्रस जीव' इन पर रखा हुआ आहारादि है वह छह भेद रूप 'निक्षिप्त' कहलाता है। चित्त सहित अप्रासुक वस्तु को सचित्त कहते हैं। ऐसे आहार को यदि श्रमण ग्रहण करते हैं तो उन्हें 'निक्षिप्त' दोष लगता है।

4. पिहित दोष – सचित्त वस्तु (अप्रासुक वस्तु) से ढ़का हुआ अथवा अचित्त भारी वस्तु से ढ़का हुआ जो आहार है उसे यदि मुनिवर लेते है तो उन्हें 'पिहित' नामक दोष लगता है।

5. संव्यवहार दोष – दान के निमित्त वस्त्र या बर्तनादि को जल्दी से खींचकर बिना देखे जो आहार मुनीन्द्रों को दिया जाता है और मुनीन्द्र उस आहार को ग्रहण करते हैं तो उन्हें 'संव्यवहार' नामक दोष लगता है। इसमें भी जीव विराधना संभव है, बर्तन का गिरना या कपड़े का फटना भी संभव है। अतः यह दोष भी मुनिवरों के लिए त्याज्य है।

6. दायक दोष – धाय, मद्यपायी, रोगी मृतक के पातक सहित, जन्म के सूतक वाला, नपुंसक, पिशाचग्रस्त, नग्न, मल–मूत्र त्याग कर आया हुआ, रुधिर शरीर से बह रहा हो, वेश्या, श्रमणिका, तैलमालिश करने वाली, अतिबाला, अतिवृद्धा, खाती हुई, गर्भिणी (5 माह से अधिक समय हो चुका हो), अंधी, किसी के आड़ में खड़ी हुई, नीचे या ऊँचे स्थान पर खड़े होकर आहार देने वाले, अग्नि जलाना, फूंकना, बुझाना, दबाना, इत्यादि कार्य करने वाले, लीपकर, पोतकर, कपड़े धोकर, बालक को स्तनपान कराते हुए छोड़ कर, आने वाली श्राविका या अन्य सावद्य कार्यों से युक्त दाता आहार देता है और मुनिराज उसे यदि ग्रहण कर लेते हैं तो उन्हें 'दायक' नाम का दोष लगता है।

7. उन्मिश्र दोष – मिट्टी, अप्रासुक जल, हरे पत्ते–फूल आदि हरित काय जौ, गेहूँ, चना आदि बीज और सजीव त्रस, इन पाँचों से मिश्रित हुआ आहार 'उन्मिश्र दोष' रूप होता है। यदि मुनिवर ऐसा आहार ग्रहण करते हैं तो उन्हें उन्मिश्र नामक दोष लगता है।

8. अपरिणत दोष – तिल का धोवन, चावल का धोवन, गर्म होकर ठण्डा हुआ जल , चने का धोवन, दाल का धोवन, अपने वर्ण रस गंध को नहीं छोड़ा है, ऐसा जल, अन्य भी उसी प्रकार से लौंग, सौंफ, हरड़ के चूर्ण से अल्प प्रासुक जल जो अन्य रूप परिणत नहीं हुआ है, वह अपरिणत कहलाता है। ऐसा जलादि भी साधुओं को लेना योग्य नहीं है यदि साधु ऐसे जल आदि (जो अप्रासुक या अल्पप्रासुक है) को ग्रहण करते हैं तो उन्हें 'अपरिणत' नामक दोष लगता है।

9. लिप्त दोष – गेरू, मेंहदी, हरिताल, सेलखड़ी, मनःशिला गीला आटा सप्रवाल (अपक्वशाक) कोंपल आदि सहित व अप्रासुक जल से लिप्त हाथ या बर्तन से जो आहार दिया जाता है उसे 'लिप्त' दोष से दूषित जानो।

10. परित्यजन दोष – बहुत सा भोजन गिराते हुए आहार लेना, (आहार लेना कम, ज्यादा गिराना) सछिद्र अंजुली पुट बनाकर आहार लेना, स्वादिष्ट, इष्ट, गरिष्ठ वस्तु आहार में लेना व शेष गिराते जाना या दूसरे को बाँटते जाना, इस प्रकार आहार करने में 'परित्यजन' नामक दोष लगता है।

ये सब एषणा समिति के दोष कहे, आगे महादोषों को कहते हैं –

महादोष :–

1. संयोजना दोष – ठण्डा भोजन या जल उष्ण भोजन या जल में मिला देना अथवा दो प्रकृति विरुद्ध पदार्थों का आपस में मिला देना, अन्य भी परस्पर विरुद्ध वस्तुओं को मिला देना 'संयोजना' नामक दोष कहलाता है।

2. प्रमाण दोष – व्यंजन आदि भोजन से उदर के दो भाग पूर्ण करना और जल

से उदर का तीसरा भाग पूर्ण करना और चतुर्थ भाग खाली रखना, सो प्रमाणभूत आहार कहलाता है इससे भिन्न जो अधिक आहार ग्रहण करते हैं उनके 'प्रमाण' या 'अतिमात्रा' नामक दोष लगता है।

3. अंगार दोष – जो साधु अति आसक्ति/गृद्धता पूर्वक आहार ग्रहण करते हैं तो उनके 'अंगार' नामक दोष लगता है।

4. धूम दोष – जो साधु आहार या आहार दाता की निंदा करते हुए (यह अनिष्ट आहार है, ये लोग अच्छा आहार बनाना नहीं जानते, इसमें नमक नहीं डाला, बूरा भी कम डाला है इत्यादि प्रकार से) आहार ग्रहण करते हैं तो उसमें 'धूम' नामक दोष लगता है।

अध: कर्म महादोष – 46 दोषों के अतिरिक्त यह 'अधःकर्म' नामक महादोष है। इसका अर्थ है – छह जीव निकायों की (5 स्थावर + 1 त्रस) हिंसा से , विराधना से और मारण आदि से अपने या पर के निमित्त से बनाया हुआ जो आहार है वह 'अध: कर्म दोष' से दूषित होता है।

जिज्ञासा 35. 46 दोष एवं अध: कर्म नामक महादोष के अतिरिक्त क्या आहार सम्बन्धी और भी कुछ दोष पाये जाते हैं? यदि हाँ, तो उन्हें बताने की कृपा करें।

समाधान: हाँ, उक्त 47 दोषों के अतिरिक्त चौदह (14) मल दोष होते हैं जिनका परिहार अनिवार्य है वे निम्नांकित हैं –

1. **नख –** मनुष्य या तिर्यंच के हाथ या पैर की उंगलियों का अग्र भाग।
2. **रोम –** मनुष्य या तिर्यंच के बाल।
3. **जंतु –** प्राणियों का निर्जीव शरीर।
4. **अस्थि –** कंकाल या हड्डी।
5. **कण –** जौ, गेहूँ आदि का बाहर का अवयव, छिलका, अनाज का टुकड़ा/अंश।
6. **कुण्ड –** शालि आदि का अभ्यन्तर भाग का सूक्ष्मावयव।
7. **पूय –** पका हुआ रुधिर या पीव।
8. **चर्म –** शरीर की त्वचा।
9. **रुधिर –** खून।
10. **माँस –** रुधिर के लिए आधार भूत पदार्थ।
11. **बीज –** उगने योग्य अवयव, साबुत धान्य गेहूँ, जौ, चना इत्यादि।
12. **फल –** जामुन, आम, आँवला, चीकू, सेव आदि साबुत फल।

13. कंद – जमीन के नीचे उत्पन्न होने वाले फल जैसे– आलू, गाजर, मूली, अदरक, शकरकन्द आदि।

14. मूल – पिप्पली आदि जड़।

इनमें से कुछ तो महामल है, कुछ अल्प मल हैं, कोई महादोष हैं, कोई अल्प दोष हैं। रुधिर, माँस, हड्डी, चर्म, पीव ये महादोष है। आहार में इनके आ जाने पर आहार का परित्याग करके (अंतराय करके) प्रायश्चित् भी लेना होता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों के मृत शरीर अर्थात् मृत, लट, चींटी, मक्खी, मच्छरादि तथा बाल, नख आ जाने पर आहार छोड़ कर किंचित प्रायश्चित् भी लेना पड़ता है। कण, कुंड, बीज, कंद, फल, फूल इनके आ जाने पर यदि इन्हें न निकाल सकें तो आहार छोड़ देना चाहिए।

सिद्ध भक्ति कर लेने के बाद अपने या दाता के शरीर से चार अंगुल प्रमाण रुधिर या पीव बहने लगे या माँस दिखायी दे जाए तो आहार का त्याग (अंतराय) करना चाहिए।

जिज्ञासा 36. आहार के भेद कितने व कौन–कौन से हैं?

समाधान : आहार के सामान्यतया 4 भेद होते हैं–खाद्य, स्वाद, लेह्य, पेय (जिनका कथन पहले किया जा चुका है) आहार के 3 भेद भी हैं –

1. सर्वेषण, 2. विद्वैषण, 3. शुद्धासन ।

1. सर्वेषण – एषणा समिति से शुद्ध आहार सर्वेषण कहलाता है तथा 5 प्रकार के रसों (खट्टा, मीठा, कड़वा, चरपरा, कषायला) अथवा षड् रसों (घी, तेल, नमक, बूरा, दूध, दही) से, साग–सब्जी, दाल–भात, रोटी, फलों सहित शुद्ध, प्रासुक, मर्यादित आहार 'सर्वेषण' कहलाता है।

2. विद्वैषण– 5 प्रकार के रसों से या 6 प्रकार के रसों से रहित, भात का मांड या कांजी शुष्क पत्र, मक्खन, छाछ आदि से सहित आहार 'विद्वैषण' है अर्थात् रसादि से रहित किन्तु छाछ आदि से सहित आहार विद्वैषण आहार कहलाता है।

3. शुद्धासन– 5 रस या षट् रस रहित, छाछ, कांजी (भात का मांड) से भी रहित जो पाक से अवतीर्ण हुआ मात्र है, किंचित भी अन्य रूप नहीं किया गया है वह शुद्धासन है अर्थात् केवल पकाये हुए भात, दाल, रोटी, सब्जी जिनमें नमक–मिर्च मसाला आदि कुछ भी नहीं डाला गया है वह आहार 'शुद्धासन' कहलाता है।

ये तीनों प्रकार का आहार ग्रहण करने योग्य है तथा सर्व रसों से सहित, सर्व व्यंजनों से सहित आहार कथंचित् ग्रहण करने योग्य है कदाचित् अयोग्य भी है।

जिज्ञासा 37. मुनिराज एषणा समिति का पालन किस प्रकार करते हैं तथा

आहार के समय क्या विचार करते हैं? बताने की कृपा करें।

समाधान : द्रव्य = (आहारादि पदार्थ की शुद्धि, अशुद्धि जानकर,) **क्षेत्र** = जंगल (जंगली, उष्ण प्रदेश) अनूप (जहाँ पानी वृक्ष पर्वतों की बहुलता हो) साधारण (जहाँ वृक्ष जल पर्वतों की न बहुलता है न कमी है वह साधारण प्रदेश कहलाता है) **काल** = (शीत उष्ण समशीतोष्ण वर्षादि को जानकर) **भाव** = (आत्मा के परिणाम श्रद्धा उत्साह को जानकर) **बल वीर्य** = (अपने शरीर के बल को एवं संहनन, शक्ति, पाचन क्षमता (वात, पित्त, कफ आदि की कैसी प्रवृत्ति है) इत्यादि बातों को ध्यान में रखते हुए, जिनागम में जैसा कहा है उसी प्रकार आहार ग्रहण करके एषणा समिति का पालन करते हैं तथा आहार के समय मनःपर्यय ज्ञान, अवधि ज्ञान, निमित्त ज्ञान अन्य या विशेष ज्ञान का प्रयोग नहीं करते। आहार के समय अपने अनशन स्वभाव का, बारह भावनाओं का, संसार शरीर भोगों से विरक्त भाव धारण किये हुए, मन–वचन–काय तीनों गुप्तियों की रक्षा, मूलगुण व उत्तर गुणों की रक्षा, संयम व शील की रक्षा करते हुए स्वभाव का चिंतन करते हैं तथा कषायों का शमन, इन्द्रियों का दमन करते हुए निर्मल परिणामों के साथ संयम, साधना, ज्ञान, तप, ध्यान की वृद्धि के लिए प्रसन्नचित हो आहार ग्रहण करते हैं। **आज्ञा** (जिनाज्ञा के उल्लंघन से रहित), **अनवस्था** (स्वेच्छाप्रवृत्ति) **मिथ्यात्वाराधना** (सम्यक्त्व के प्रतिकूल आचरण) **आत्मनाश** (स्व का विनाश) **संयम नाश** (संयम की हानि जिससे हो) इन पाँचों का परिहार कर ही 'सिंहवृत्ति' से ये मुनिराज वीर चर्या का अनुकरण करते हैं।

जिज्ञासा 38. अंतराय कर्म किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? और कौन–कौन से हैं? बताने की कृपा करें।

समाधान : किसी कार्य में विघ्न आ जाए जिससे वह कार्य पूर्ण न हो सके उसे अंतराय कर्म कहते हैं अथवा जिस कर्म के उदय से जीव के दान, लाभ, भोग–उपभोग एवं वीर्यादि गुणों का नाश हो जाता है उसे अंतराय कर्म कहते हैं। इस अंतराय कर्म के 5 भेद हैं –

1. दान अन्तराय कर्म
2. लाभ अन्तराय कर्म
3. भोग अन्तराय कर्म
4. उपभोग अन्तराय कर्म
5. वीर्य अन्तराय कर्म

1. **दानान्तराय** – जिस कर्म के उदय से दाता सत्पात्रों को आहारादि दान की

इच्छा रखते हुए भी नहीं दे पाता और यदि देता है तो उसमें कोई न कोई विघ्न आ जाता है। यह दानान्तराय कर्म कहलाता है।

2. लाभान्तराय – लाभान्तराय कर्म के उदय से जीव लाभ प्राप्त नहीं कर पाता। सामने लाभ प्राप्त होता देखकर भी उससे वंचित रह जाता है।

3. भोगान्तराय – जो वस्तु एक बार भोगने में आये उसे भोग कहते हैं। जैसे– दाल, रोटी, पानी, तेल आदि। एक बार सेवन करने योग्य वस्तुओं का प्राप्त नहीं हो पाना अथवा प्राप्त करते हुए भी उनको भोग नहीं पाना भोगान्तराय कर्म के उदय का परिणाम है।

4. उपभोगान्तराय – जो वस्तु बार–बार सेवन करने में आती है, वे उपभोग की वस्तुएं कहलाती हैं। जैसे– वस्तु वाहन, आसन, शैय्या, आभूषणादि। उपभोग्य वस्तुओं को प्राप्त करके भी उनका उपभोग जिस कर्म के उदय से नहीं कर पाते हैं वह उपभोगान्तराय नामक कर्म है।

5. वीर्यान्तराय – जिस कर्म के उदय से पर्याप्त भोगोपभोग के उपरांत भी शारीरिक शक्ति की हीनता होना या शक्ति का ह्रास होते जाना वीर्यान्तराय कर्म का ही कुफल है। वीर्यान्तारय कर्म के क्षय से ही अनंत शक्ति की प्राप्ति होती है। ज्यों–ज्यों क्षयोपशम बढ़ता है त्यों–त्यों शक्ति भी बढ़ती है। वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने पर शक्ति का ह्रास होता है।

जिज्ञासा 39. आपने कहा कि मुनिराज 32 अंतरायों को टालकर आहार ग्रहण करते हैं यदि उनमें से कोई कारण उपस्थित हो जाए तो वे अंतराय मानकर आहार छोड़ देते हैं। वे अंतराय कर्म कौन–कौन से हैं? बताने की कृपा करें।

समाधान: दाता आहार देना चाहता है, सत्पात्र लेना चाहते हैं फिर भी दाता के दानान्तराय कर्म के उदय से एवं पात्र के लाभान्तराय/भोगान्तराय कर्म के उदय से आहार को प्राप्त नहीं कर पाते। सामान्यतया ऐसे 32 कारण दिये हैं, जिनके उपस्थित होने पर मुनिराज आहार छोड़ देते है वे निम्नांकित हैं–

1. काक – आहार के लिए गमन करते हुए यदि मुनिराज के ऊपर काक, वक, बाज, चील आदि में से कोई भी पक्षी बीट कर दे तो मुनिराज उस दिन अंतराय मानकर आहार त्याग देते हैं यहाँ पर कारण की मुख्यता का कथन कार्य में करके साहचर्य से अंतराय को भी काक कह दिया है।

2. अमेध्य – आहारार्थ गमन करते समय यदि मुनिराज का पैर विष्ठा, गीला गोबर, गंदी कीचड़ आदि में लिप्त हो जाए तो मुनिराज आहार का त्याग कर देते हैं। यह

अमेध्य नाम का अंतराय है।

3. वमन – आहार करते समय मुनिराज को वमन (उल्टी) हो जाए तो भी मुनिराज आहार का त्याग कर देते हैं उस दिन पुनः आहार नहीं करते हैं।

4. रोधन – आहार हेतु जाते समय कोई धर्म द्रोही श्रावक मुनिराज को रोक दे ''कि आहार हेतु नहीं जा सकते या जाते हुए को विद्वेष भावना से पकड़ ले तो मुनिराज पुनः आहार हेतु नहीं निकलते। उसे अंतराय मान कर समता भाव मन में धारण कर लेते हैं।

5. रुधिर – आहार करते समय स्वयं के अथवा दाता के शरीर से चार अंगुल तक बहता हुआ रुधिर, पीव दिखायी दे अथवा चार अंगुल प्रमाण माँस युक्त घाव दिखायी दे जाए तो मुनिराज अंतराय कर लेते हैं।

6. अश्रुपात – अंतरंग में दुःखित होते हुए अपने अथवा आहारदाता के आँसू बहने लगें अंतरंग संतापित है तो मुनिराज आहार ग्रहण नहीं करते। कभी–कभी दाता के नेत्रों से हर्षाश्रु भी बह निकलते हैं, हर्षाश्रु के बहने का या रोग के कारण आँखों से पानी बहना है तो इसका अंतराय नहीं होता। किन्तु ध्यान रखें आँसू न बहें तो अति उत्तम है।

7. जान्वधः परामर्श – जानु = घुटना, अधः = नीचे, परामर्श = स्पर्श। यदि आहार करते समय मुनिराज अपने हाथों से घुटने के नीचे स्पर्श कर लें या भूल से हाथ नीचे तक खुजलाने आदि के निमित्त पहुँच जाए तो अंतराय होता है।

8. जानूपरिव्यतिक्रम – जानु = घुटना, उपरि = ऊपर व्यतिक्रम = नियमित क्रम का विशेष उल्लंघन। आहार करते समय यदि मुनिराज के हाथों से घुटने के ऊपर का भाग (जंघा आदि स्थान) स्पर्श हो जाए तो मुनिराज उस दिन अंतराय मान लेते हैं।

9. नाभ्योधो निर्गमन – नाभि = टुण्डी **अधो** = नीचे **निर्गमन** = निकलना अर्थात् मुनिराज यदि आहार को जाते समय नाभि के नीचे मस्तक झुकाकर किसी दाता के घर में प्रवेश करते हैं तो यह नाभ्योधो निर्गमन नाम का अंतराय होता है अतः मुनिराज, जिस दाता के घर का दरवाजा (प्रवेश द्वार) नीचा होता है तो वे वहाँ से लौट आते हैं।

10. प्रत्याख्यान सेवन – यदि आहार करते समय त्यागी हुई वस्तु अंजुलि में आ जाती है, जिसका अंजुलि से निकलना अशक्य हो तो मुनिराज अंतराय कर लेते हैं अथवा अभक्ष्य वस्तु हाथ में या आहार में आ जाती है तो भी मुनिराज अंतराय कर लेते हैं।

11. जन्तु वध – आहार करते समय अपने या दाता के द्वारा सामने किसी जंतु (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव) का वध हो जाए तो मुनिराज आहार छोड़ देते हैं पुनः वसतिका में आकर उसका अपने गुरु से प्रायश्चित् भी लेते हैं। यह 'जंतुवध' नामक अंतराय है।

12. काकदि पिण्ड हरण – आहार करते समय कौआ आदि कोई पक्षी मुनिराज

की अंजुलि से ग्रास ले उड़े अथवा श्रावक ही मुनिराज की अंजुलि में से ग्रास उठा लें तो मुनिराज का अंतराय होता है अतः श्रावक को मुनिराज की अंजुलि में रखा हुआ ग्रास कारणवश भी नहीं उठाना चाहिए और न ही उनसे प्रसाद की याचना करनी चाहिए।

13. **पिण्ड पतन** – आहार करते समय यदि मुनिराज की असावधानी से पूरा ग्रास नीचे गिर जाये अथवा दाता की असावधानी से ग्रास अंजुलि छूकर नीचे गिर जाये, अंजुलि में उस समय ग्रास न हो अर्थात् अंजुलि (पाणिपात्र) खाली हो तो मुनिराज उसका अंतराय ही मानते हैं और आहार छोड़ देते हैं अतः आहार सावधानी पूर्वक देना चाहिए जिससे ग्रास (आहार का कवल) नीचे न गिरे।

14. **प्राणी जंतु वध** – आहार करते समय कोई जीव स्वयं मुनिराज की अंजुलि (पाणिपात्र = जो दोनों हाथों को जोड़कर अंजलि पुट बनाया है) में आकर मर जाए तो भी मुनिराज का अंतराय होता है अतः आहार के समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिए, जिससे आहारादि के समय जीव वध मक्खी मच्छर आदि की विराधना/घात की संभावना भी न रहे।

15. **माँसादि दर्शन** – आहार करते समय यदि मुनिराज को हड्डी, माँस गीला–ताजी चमड़ा, शराब या अन्य भी (सप्त धातु या कुधातु में से कोई) दिखायी दे जाए तो मुनिराज उस समय आहार छोड़ देते हैं अतः श्रावक (उत्तम दाता) को चाहिए कि वह इतना ध्यान रखे कि वहाँ इस प्रकार की किसी भी वस्तुओं की संभावना व शंका भी न हो।

16. **उपसर्ग** – आहार करते समय यदि मुनिराज पर देव कृत, मनुष्य कृत, तिर्यंच कृत, देवी, मनुष्यनी या तिर्यंचनी कृत अथवा अचेतन कृत उपसर्ग आदि होने की स्थिति में भी मुनिराज आहार का त्याग करते हैं ये 'उपसर्ग' नामका सोलहवां अन्तराय है।

17. **पादान्तरे जीव** – आहार करते समय यदि कोई पंचेन्द्रिय जीव आदि मुनिराज के दोनों पैरों के बीच से निकल जाए तो भी मुनिराज आहार छोड़कर अंतराय पालते हैं कही हिंसा आदि न हो जाए तथा वहाँ फिर क्षेत्र अशुद्धि की भी संभावना रहती है।

18. **भाजन संपात** – मुनिराज को आहार देते समय चम्मच, कटोरी, थाली, गिलास, जग आदि बर्तन (जिससे दाता आहारादि दे रहा हो) गिर जाने से भी मुनिराज का अंतराय होता है। अतः आहार देते समय सावधानी रखें, जल्दबाजी न करें, जिससे कोई बर्तनादि नीचे न गिरे क्योंकि इससे जीववध की संभावना रहती है तथा प्रमाद पापाश्रव का भी हेतु हैं अतः उस समय मुनिराज अंतराय कर लेते हैं।

19. **उच्चार** – आहार करते समय यदि पात्र के उदर से अथवा आहार देते हुए दाता

के उदर से मल च्युत हो जाए तो अंतराय होता है। फिर वे सत्पात्र आहार नहीं करते।

20. प्रस्रवण – आहार करते समय पात्र अथवा दाता के मूत्रादि हो जाए अथवा रज–वीर्यादि का स्खलन हो जाए तो आहार छोड़ दिया जाता है अथवा इन्द्रियों या मन मे कोई विकृति आ जाए तब भी आहार छोड़ देना चाहिए।

21. अभोज्य गृह प्रवेश – आहार हेतु गमन करते समय यदि मुनिराज का प्रमाद वश या अज्ञानता से चाण्डाल, म्लेच्छ, वेश्यादि, व्यभिचारिणी या माँसाहारी व्यक्तियों के घर में प्रवेश हो जाए तो मुनिराज आहार का त्याग कर देते हैं और उस दिन अंतराय मान लेते हैं।

22. पतन – आहार करते समय यदि मुनिराज मूर्च्छा से, जंघाबल घट जाने से, शक्ति की क्षीणता से या मृगी आदि रोग से गिर पड़े या किसी श्रावक की असावधानी से धक्कादि लग जाने से गिर पड़े तो भी मुनिराज का अंतराय होता है और वे आहार त्याग देते हैं।

23. उपवेशन – आहार करते समय यदि मुनिराज आहार करते–करते किसी कारणवश बैठ जाते हैं तो उनका अंतराय होता है फिर वे आहार ग्रहण नहीं करते हैं।

24. सदंश – आहार करते समय यदि मुनिराज को सांप, बिच्छू, चूहा, कुत्ता, बिल्ली आदि छू जाए अथवा काट जाए तो मुनिराज का अंतराय हो जाता है। यद्यपि कुत्ते, बिल्ली आदि यदि शाकाहारी हैं तो भी इनके चौके में आने से, छूने से, क्षेत्र अशुद्धि हो जाती है और मुनिराज पुनः आहार ग्रहण नहीं करते हैं।

25. भूमि स्पर्श – आहार मुद्रा छोड़कर सिद्ध भक्ति करने के पश्चात् आहार ग्रहण हेतु खड़े होते समय अथवा अन्य किसी प्रकार हाथों से भूमि का स्पर्श हो जाता है तो भी अंतराय होता है।

26. निष्ठीवन – आहार करते समय यदि मुनिराज के मुख से थूक, कफ, श्लेष्मा आदि निकल जाए तो भी मुनिराज अंतराय ही करते हैं अर्थात् आहार छोड़ देते हैं। पुनः उस दिन आहार ग्रहण नहीं करते है।

27. उदर कृमि निर्गमन – आहार करते समय यदि उदर से कृमि निर्गमन हो जाता हैं तो मुनिराज आहार छोड़ देते हैं।

28. अदत्त ग्रहण – आहार के समय मुनिराज के द्वारा दाता की कोई वस्तु बिना दाता के (मालिक के) दिये हुए ग्रहण कर ली जाए तो भी अंतराय होता है। दाता द्वारा भक्ति पूर्वक देय वस्तु ही ग्राह्य होती है।

29. **प्रहार** – आहार के समय यदि मुनिराज पर या दाता पर कोई अस्त्र–शस्त्र का प्रहार कर दे तो भी मुनिराज आहार त्याग देते हैं।

30. **ग्राम दाह** – आहार के समय यदि ग्राम में अग्नि आदि लग जाए तो उस समय भी मुनिराज आहार का त्याग कर देते हैं अथवा भूकम्प आदि आ जाने से, जिससे प्रत्यक्ष जन–धन की हानि होती दिखे अथवा ज्वालामुखी आदि फूट जाए तो मुनिराज आहार छोड़ देते हैं।

31. **पादेन किंचित् ग्रहण** – आहार के समय यदि पैर से कुछ ग्रहण कर लिया जाए तो भी अंतराय होता है।

32. **करेण किंचित ग्रहण**–आहार के समय यदि हाथ से कोई वस्तु ग्रहण कर ली जाए तो भी मुनिराज आहार त्याग कर अंतराय कर लेते हैं।

उपरोक्त काक आदि बत्तीस अंतराय हैं जो कि आहार त्याग के लिए कारणभूत होते हैं इनके अतिरिक्त भी कई कारण हैं जिनके उपस्थित होने पर मुनिराज आहार का त्याग कर देते हैं जैसे चाण्डाल आदि का स्पर्श, कलह, इष्ट मरण, साधर्मी की समाधि (संन्यास मरण) अथवा साधर्मी का पतन, प्रधान का मरण, राजा आदि का मरण, राज–भय, लोक निंदा, संयम व निर्वेद के लिए भी साधु पुरुष आहार का त्याग कर देते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अंतराय देखने से कुछ सुनने से, कुछ स्पर्श सम्बन्धी होते हैं जिनका साधक द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अनुकूलता–प्रतिकूलता देख कर अंतराय का पालन करते हैं। इसी प्रकार आर्यिकाएं भी सभी अंतरायों का पालन करती हैं, विशेष यह है कि 'उपवेशन' के स्थान 'उत्तिष्ठ' (खड़े हो जाना) अंतराय का पालन करती हैं।

जिज्ञासा 40. आपने कहा था कि नवधा भक्ति पूर्वक आहार देना चाहिए वे नवधा भक्ति कौन–कौन सी हैं तथा उत्तम सत्पात्रों को आहार देने की विधि क्या है? समझाने की कृपा करें।

समाधान : श्रावक दस प्रकार की पूर्वोक्त शुद्धियों का ध्यान रखते हुए स्वयं के लिए भोजन तैयार करता है, वह श्रावक अपने छह कर्त्तव्यों का पालन करने में सदैव संलग्न रहता है। जब उसके सातिशय पुण्य से उसे सच्चे देव–शास्त्र–गुरु तीनों का सानिध्य प्राप्त होता है तो अपने भाग्य की सराहना करते हुए कर्त्तव्य पालन करने में संलग्न हो जाता है। सत्पात्रों में उत्तम पात्रों को आहार दान देने का इच्छुक वह दाता मुनिराजों की शुद्धि हेतु अपने चौके से शुद्ध प्रासुक (24 घंटे की मर्यादा वाला गर्म) पानी शुद्ध वस्त्र पहिन कर मुनिराजों के पास ले जाता है। पुनः मुनिराज शुद्धि करके श्री जिनेन्द्र भगवान के सामने सिद्ध व योग भक्ति करने के पश्चात् अपने मन में नियम

लेकर आहार चर्या हेतु आहार मुद्रा में (दायें हाथ को अपने कंधे पर रखकर बांये हाथ में पिच्छी–कमण्डल लिये हुए अथवा सामान्य मुद्रा में, कदाचित् मुद्रा चौके के सामने भी ग्रहण कर सकते हैं) निकलते हैं। दाता नवधा भक्ति से युक्त होता हुआ आहार दान हेतु प्रवृत्त होता है। नवधा भक्ति का **अर्थ** है – नौ प्रकार से भक्ति (मन, वचन, काय–कृत, कारित, अनुमोदना से भक्ति) करना। अथवा नौ प्रकार की निम्नांकित भक्ति नवधा भक्ति कहलाती है।

1. पड़गाहन, 2. उच्चासन, 3. पाद प्रक्षालन, 4. अर्चना/पूजन, 5. नमस्कार, 6. मन शुद्धि, 7. वचन शुद्धि, 8. काय शुद्धि, 9. आहार–जल शुद्धि।

1. पड़गाहन – आचार्य, उपाध्याय, साधु अथवा तीर्थंकर आदि महापुरुष, द्वादशांग के पाठी श्रुत केवली, शैक्ष्य, वादी–प्रतिवादी मुनिराज परम तप को धारण करने वाले दिगम्बर साधुओं को आहार हेतु सामने से आते देखते ही बोलना प्रारंभ करें –

''हे स्वामिन ! नमोऽस्तु.....नमोऽस्तु.....नमोऽस्तु.....जब निकट आ जाएं तब बोले.....अत्र अत्र.....तिष्ठ.....अत्र तिष्ठ.....अत्र तिष्ठ.....। मुनिराज सामने अपना नियम देखते हैं। वे मन्दिर जी से जब आहार हेतु निकले थे तब कुछ नियम सोच कर/संकल्प लेकर निकले थे.....। उनका वह नियम वहाँ मिल जाएगा तो वे वहाँ खड़े रह जाऐगें.....।

तब दाता शुद्धि बोलते हुए अत्यन्त प्रसन्नता के साथ भाव विभोर होता हुआ तीन परिक्रमा लगाये। जिनके द्वारा नियम मिला है वे परिक्रमा लगायें कदाचित् सभी लगा सकते हैं। परिक्रमा लगाते समय ध्यान रखें कि पैर किसी जीव पर न पड़े हरी घास आदि या कच्चे पानी पर अथवा किसी गंदे पदार्थ कपड़ों की चिन्दी या प्लास्टिक के गंदे टुकड़ों पर भी न पड़े, बिना शोला वाले सभी दूर रहें। पड़गाहन हेतु खड़े होने से पहले ही उस स्थान की शुद्धि कर लेनी चाहिए वहाँ मांगलिक स्वरूप चौक आदि भी पूर लेना चाहिए। यह विशेष भक्ति का प्रतीक है। तीन परिक्रमा लगाकर पुनः शुद्धि बोलें ! हे स्वामिन् ! मन शुद्धि–वचन शुद्धि–काय शुद्धि–आहार जल शुद्ध है। मम गृह प्रवेश कीजिए। पुनः मार्ग शुद्धि बोलते हुए मुनिराज के आगे–आगे चलें। किन्तु किनारे में चलें उन्हें पीठ करके न चलें। रसोई में प्रवेश करने के पूर्व अपने पैर शुद्ध जल से धो लें। महाराज जी जब अपने कमण्डलु के जल से अपने पैर धो लें तब पुनः शुद्धि बोलते हुए पड़गाहन करने वाले एवं चौके के अन्दर विद्यमान श्रावक व श्राविकाएं महाराज श्री से निवेदन करें – ''हे स्वामिन ! भोजनशाला में प्रवेश कीजिए।'' इस प्रकार पड़गाहन करना प्रथम भक्ति है।

2. उच्चासन– महाराज श्री जब चौके में आ जाएं तब उनके बैठने के लिए

लकड़ी का पाटा लगा दें। निवेदन करें, "हे स्वामिन् ! उच्चासन ग्रहण कीजिए"। (ध्यान रखें, पाटा सनमाइका आदि का न हो अथवा फेवीकॉल, सरेस आदि से निर्मित न हो। न ही चौके में सनमाइका या फेवीकॉल सरेस आदि के प्रयोग से निर्मित चौकी आदि ही रखें। क्योंकि ये वस्तुएं अशुद्ध होती हैं। पाटे के रखने से पहले देख लें कि उसके नीचे कोई जीव जंतु न हो तथा वह पाटा बैठने/खड़े होने से हिले नहीं क्योंकि पाटे के हिलने से जीव वध की संभावना रहती है।

3. पाद प्रक्षालन – जब परम पूज्य आचार्य श्री/उपाध्याय श्री/मुनि श्री उच्च आसन, पाटे या चौकी पर विराजमान हो जायें, तब प्रासुक जलादि से उनके चरण कमल धोवें। पुनः गंधोदक/चरणोदक अपने उत्तमांगों में लगाएं.....। उस थाली एवं गिलास को अलग रख दें उन बर्तनों का प्रयोग भोजन के लिए न करें व स्वच्छ कपड़े से उनके पैर पोंछ दें।

4. अर्चना/पूजन – दिगम्बर साधुओं की अष्ट द्रव्य से पूरी पूजन करनी चाहिए। पूजन करते समय आचार्य श्री/उपाध्याय श्री/मुनि श्री का नाम मालूम न हो अथवा यह भी ज्ञात न हो कि आचार्य परमेष्ठी हैं। उपाध्याय परमेष्ठी हैं या साधु परमेष्ठी, तब मुनि श्री (मुनीन्द्राय) कहकर उनकी पूजा कर लेनी चाहिए। पूजा की विधि निम्नांकित है..... ऐसे भी पूजन कर सकते हैं –

आह्वानन छंद

''विषय कषाय आरंभ परिग्रह, रहित मोह से हे! मुनिवर।
ज्ञान ध्यान तप लीन निरंतर, स्वपर हितैषी हे! गुरुवर॥
भक्ति भाव से तुम्हें बुलाऊं, हृदय कमल में आ जाओ।
हे पावन परमेश्वर मेरे, भवदधि पार करा जाओ॥

दोहा –

आह्वान करता गुरु–मन मंदिर हो वास।
सत्य समर्पण भक्तिवश–तुम्हें पुकारे दास॥

नोट – थाली, ठौना, कलश पर स्वस्तिक बना लें।

1. हाथ में पीले चावल या लवंग आदि से आह्वानन–स्थापना व सन्निधिकरण करें।

2. आचार्य श्री की पूजन के समय ॐ ह्रूँ /उपाध्याय श्री की पूजन के समय ॐ ह्रौं /मुनि श्री पूजन के समय ॐ ह्रः बीजाक्षरों का प्रयोग करना चाहिए।)

ॐ ह्रूँ/ह्रौं/ह्रः प.पू. मुनीन्द्र श्री (महाराज श्री का यहाँ नाम लें) अत्र अवतर अवतर!

संवौषट् आह्वाननम्

ॐ ह्रूँ/ह्रौं/ह्रः प.पू. मुनीन्द्र श्री (नाम.....) अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रूँ/ह्रौं/ह्रः प.पू. मुनीन्द्र श्री (नाम.....) अत्र मम सन्निहितो भव–भव वषट् सन्निधिकरणं।

पुष्पांजलि क्षिपामि.....। (पीले चावल/लौंग क्षेपण करें)

ॐ ह्रूँ/ह्रौं/ह्रः प.पू. मुनीन्द्र श्री (नाम.....) महाराजाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वापामीति स्वाहा।

(तीन बार जल धारा पूर्वक जल चढ़ाना चाहिए)

ॐ ह्रूँ/ह्रौं/ह्रः प.पू. मुनीन्द्र श्री (नाम.....) महाराजाय संसार ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

(चन्दन अनामिका उंगली से चढ़ाना चाहिए)

ॐ ह्रूँ/ह्रौं/ह्रः प.पू. मुनीन्द्र श्री (नाम.....) महाराजाय अक्षय पद प्राप्ताये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

(अक्षत सफेद चावल चढ़ाना चाहिए)

ॐ ह्रूँ/ह्रौं/ह्रः प.पू. मुनीन्द्र श्री..... महाराजाय कामवाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

(पुष्प/पीले चावल चढ़ाना चाहिए।)

ॐ ह्रूँ/ह्रौं/ह्रः प.पू. मुनीन्द्र श्री (नाम.....) महाराजाय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(नैवेद्य/सफेद चटक आदि चढ़ाना चाहिए)

ॐ ह्रूँ/ह्रौं/ह्रः प.पू. मुनीन्द्र श्री (नाम.....) मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

(दीपक/पीली चटक चढ़ाना चाहिए)

ॐ ह्रूँ/ह्रौं/ह्रः प.पू. मुनीन्द्र श्री (नाम.....) अष्ट कर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

(शुद्ध धूप चढ़ाना/खेना चाहिए)

ॐ ह्रूँ/ह्रौं/ह्रः प.पू. मुनीन्द्र श्री (नाम.....) मोक्ष फल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

(अखण्ड शुचि सरस फल चढ़ाना चाहिए)

ॐ ह्रूँ/ह्रौं/ह्रः प.पू. मुनीन्द्र श्री (नाम.....) अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

(आठों द्रव्यों को मिलाकर अर्घ चढ़ाना चाहिए)

निर्मल जल सा मन है जिनका, चंदन से है दिव्य वचन
अक्षत सम अक्षत श्रद्धा है, सुमनों सम सुंदर है तन॥
नैवेद्य चरित्र ज्ञान है दीपक, वसुविधि करते धूप दहन।
ध्यान सुफल है अर्घ समाधि, करते तुमको नित्य नमन॥
अनर्घ पद की प्राप्ति हेतु, मेरा अर्घ समर्पित है।
इक जीवन क्या सौ सौ जीवन, गुरुवर तुम्हें समर्पित हैं॥

ॐ ह्रूँ/ह्रौं/ह्रः प.पू. आचार्यश्री/उपाध्याय श्री/मुनि श्री (नाम.....) महाराजाय अनर्घ पद प्राप्ताये महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

नोट: अनुकूलता हो तो लघु शांति पाठ व विसर्जन पाठ भी पढ़ सकते हैं।

लघु शांतिपाठ

संपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीनकों यतिनायकों को
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले, कीजे सुखी हे मुनि शांति दें।

सर्वहित भावना

(पुष्प वृष्टि/पीले चावल दोनों हाथों से करना चाहिए)

होवे सारी प्रजा को सुख, बलयुत हो धर्मधारी नरेशा
होवे वर्षा समय पे, तिल भर न रहे व्याधियों का अंदेशा।
होवे चोरी न जारी, सुसमय वरते हो न दुष्काल भारी
सारे ही देश धारे जिनवर, वृष को जो सदा सौख्यकारी॥

मंगल भावना

(पुष्प/पीले चावल दोनों हाथों से चढ़ाना चाहिए)

शास्त्रों का हो पठन, सुखदा लाभ सत्संगति का।
सद्व्रतों का सुजस कहके, दोष ढाकूं सभी का॥
बोलूं प्यारे वचन हित के आपका रूप ध्याऊं।
तोलों सेउं चरण जिनके मोक्ष जबलों न पाऊं॥
तव पद मेरे हिय में मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तबलों लीन रहूं प्रभु जबलों न पाया मुक्ति पद मैंने॥

क्षमा प्रार्थना

(पीले चावल चढ़ाकर मंगल भावना भानी चाहिए)

अक्षर पद मात्रा से दूषित जो कुछ कहा गया हो मुझसे
क्षमा करे प्रभु सो करुणाकरि पिण्ड छुड़ाऊं भव दुख से।
हे जगबन्धु मुनिश्वर पाऊं तब चरण शरण बलिहारी
मरण समाधि सुदुर्लभ कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी॥

(हाथ जोड़ कर क्षमा प्रार्थना करना चाहिए अंत में पुष्पक्षेपण करें)

लघु विसर्जन पाठ

बिन जाने वा जानके, रही भूल जो कोय
तुम प्रसाद तें परमगुरु, सो सब पूरण होय।
पूजन विधि जानू नहीं, नहीं जानूं आह्वान
और विसर्जन हूँ नहीं, क्षमा करहू भगवान॥
मंत्र हीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन गुरुदेव।
क्षमा करहू राखऊ मुझे देऊ चरण की सेव॥

(पुष्पांजलि क्षेपें, पीले चावल या लवंग चढ़ाकर निष्ठापन करें)

श्री मुनिवर की आशिका लेऊँ शीश नवाय।
भव भव के पातक मिटें दुख दूर हो जाये॥

(यहाँ नौ बार णमोकार मंत्र पढ़कर कायोत्सर्ग करना चाहिए)

5. नमस्कार – पूजन करने के उपरान्त दोनों हाथों को जोड़कर गवासन से बैठकर तीन आवर्त सहित तीनों योगों से नमस्कार करना चाहिए।

यदि आचार्य परमेष्ठी/उपाध्याय परमेष्ठी/साधु परमेष्ठी हैं तो **'नमोऽस्तु महाराज जी'**

यदि आर्यिका माता जी हैं तो–**'वंदामि माताजी'**

यदि ऐलक–क्षुल्लक जी हैं तो– **'इच्छामि महाराज जी'**

क्षुल्लिका माताजी को भी **'इच्छामि माताजी'** ऐसा कहना चाहिए।

ब्रह्मचारी/ब्रह्मचारिणी को **'वंदना भैयाजी/दीदी जी,'** ऐसा कहना चाहिए।

6. मन शुद्धि– चौके वाले मन शुद्धि बोलें तथा अपने मन को शुद्ध ही रखें। मन में कोई असद् विकल्प न लावें।

7. वचन शुद्धि– वचन शुद्धि बोलें/वचनों का प्रयोग कम से कम करें सीमित, हितकारी, प्रिय/आवश्यक वचन ही बोलें। अनावश्यक चर्चाएं न करें।

8. काय शुद्धि– कुल/जाति/वस्त्र/शरीर आदि की शुद्धि–काय शुद्धि बोलकर प्रकट करना चाहिए।

9. आहार जल शुद्ध है– आहार जल की शुद्धि बोलकर पात्र को यह विश्वास दिलाएं कि सभी पदार्थ शुद्ध, प्रासुक, मर्यादित, भोज्य/ग्रहण करने के योग्य हैं।

पुनः सम्पूर्ण प्रकार के आहार/भोजन सामग्री एक थाली में लगाकर दिखायें जिस वस्तु का महाराज श्री का (सत्पात्रों का) त्याग होगा उसे वे निकलवा देंगे अथवा जो उनकी प्रकृति के विरुद्ध है उसे भी निकलवा देंगे।

इसके उपरान्त आहार ग्रहण हेतु निवेदन करें –

"हे स्वामिन् मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि आहार जल शुद्ध है, मुद्रा छोड़कर अंजुलि बनाकर आहार ग्रहण करें।"

इस प्रकार भक्ति करना ''नवधा भक्ति'' कहलाता है। सत्पात्रों की उक्त नवधा भक्ति अनिवार्य होती है यदि एक भी भक्ति कम होती है तो वे आहार ग्रहण नहीं कर सकते। ऐसी आगम की आज्ञा है।

जिज्ञासा 41. आर्यिका माता जी की नवधा भक्ति किस प्रकार की जाती है? समझाने की कृपा करें।

समाधान : आर्यिकाओं का पड़गाहन करते समय उन्हें 'हे माताजी वन्दामि वन्दामि वन्दामि अत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ.....ऐसा कहना चाहिए।

1. किन्ही–किन्ही संघों में आर्यिका जी का पड़गाहन करते समय परिक्रमा भी लगाई जाती है, किन्ही संघों में परिक्रमा आवश्यक नहीं हैं।

2. किन्ही–किन्ही संघों में आर्यिकाओं की नवधा भक्ति करते समय पाद प्रक्षालन व पूजन को भी आवश्यक नहीं माना जाता। किन्ही संघों में अष्ट द्रव्य से पूजन किया जाता है तो किन्हीं संघों में अर्घ ही चढ़ाया जाता है। जिस संघ की जैसी परम्परा हो श्रावक को वैसा ही करना चाहिए। इससे सम्यक्त्व व देश चारित्र मे कोई दोष भी नहीं आता, अतः श्रावक को हठवादी नहीं बनना चाहिए।

3. नमस्कार करते समय आर्यिकाओं को वंदामि कहें। आर्यिकाएं भी आहार करपात्र में ही बैठकर ग्रहण करती हैं। शेष भक्ति पूर्ववत् जानना चाहिए।

जिज्ञासा 42. ऐलक जी, क्षुल्लक जी व क्षुल्लिका जी की नवधा भक्ति किस प्रकार की जाती है? समझाने की कृपा करें।

समाधान : ऐलक जी, क्षुल्लक जी, क्षुल्लिका जी परमेष्ठी नहीं, उत्कृष्ट श्रावक–श्राविका हैं आर्यिका माताजी भी परमेष्ठी नहीं किन्तु उपचार से महाव्रती कही

जाती हैं ऐलक जी, क्षुल्लक जी, क्षुल्लिका जी उपचार से भी महाव्रती नहीं हैं अतः इनकी नवधा भक्ति आचार्य, उपाध्याय, साधु (मुनियों) के समान नहीं की जा सकती। बिना भक्ति के ये भी आहार ग्रहण नहीं कर सकते। अतः पदोचित् भक्ति करना चाहिए।

1. पड़गाहन करते समय बोलें....."हे स्वामिन् इच्छामि इच्छामि इच्छामि..... "क्षुल्लिका जी" हैं तो हे माताजी इच्छामि इच्छामि इच्छामि..... इत्यादि बोलें।

2. आर्यिका माता जी सोलह हाथ की एक साड़ी मात्र रखती हैं जबकि क्षुल्लिका जी एक साड़ी के अलावा एक चादर और रखती हैं।

3. ऐलक जी, क्षुल्लक जी व क्षुल्लिका जी का पड़गाहन करते समय परिक्रमा नहीं लगाई जाती तथा पाद प्रक्षालन का गंधोदक भी नहीं लिया जाता। न ही इनकी पूरी पूजा की जाती है।

4. किन्ही–किन्ही संघों में ऐलक जी क्षुल्लक जी व क्षुल्लिका जी के पाद प्रक्षालन व अर्घ आवश्यक नहीं समझा जाता, किन्ही–किन्ही संघों में पाद प्रक्षालन व अर्घ अनिवार्य ही माने जाते हैं। नमस्कार के समय इन्हें 'इच्छामि' ही कहना चाहिए।

5. जिस संघ की जैसी परम्परा हो, श्रावकों को उसी प्रकार की आगमानुकूल भक्ति करना चाहिए। इन मध्यम पात्रों की भी नवधा भक्ति होती है। सत्पात्रों की भक्ति से सम्यक्त्व में मलिनता नहीं अपितु निर्मलता/विशुद्धि ही बढ़ती है। चतुर्थ गुणस्थान वाले श्रावक या श्राविका द्वारा अथवा मध्यम जघन्य देशव्रती श्रावकों द्वारा भी ये सभी पूज्य हैं अतः 'नवधा भक्ति' विधेय ही है।

6. शेष भक्ति पूर्वोक्त प्रकार ही करना चाहिए।

जिज्ञासा 43. अविरत सम्यग्दृष्टि भी जघन्य पात्र होता है, क्या उसकी भी नवधा भक्ति होती है?

समाधान: हाँ, अविरत सम्यग्दृष्टि भी जघन्य सत्पात्र होता है वह भी यथोचित नवधा भक्ति का पात्र है किन्तु अव्रतियों के द्वारा ही, न कि व्रतीयों के द्वारा। अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक का निमंत्रण करके ससम्मान, हाथ जोड़कर, प्रमुदित मन, मिष्ट वचनों के साथ "आहार जल शुद्ध है" उक्त वचन बोलते हुए भोजन करायें। चौके में प्रवेश करने से पहले पैर धोने के लिए पानी दे दें जिससे वह स्वयं पैर धोकर प्रवेश करें, पुनः उच्चासन पर बिठाकर आत्मीयता से सभक्ति आहार करायें।

जिज्ञासा 44. व्रती श्रावक के सामान्यतया कितने अंतराय होते हैं, जिनका पालन करना अनिवार्य होता है, वे अंतराय कौन–कौन से हैं? बताने की कृपा करें।

समाधान –

माँस रक्तार्द चर्मास्थि पूय दर्शनतस्त्यजेत्।

मृताङ्गि वीक्षणादन्नं प्रत्याख्यातान्न सेवनात् ॥424॥

अर्थ – माँस, रक्त, गीला चमड़ा, हड्डी और पीप के देखने से, मृत प्राणियों के देखने से तथा छोड़ा हुआ अन्न ग्रहण करने में आ जाने से भोजन का त्याग करना चाहिए।

उक्त सात प्रकार के अंतराय व्रती श्रावको के सम्यक्त्व कौमुदी में सामान्यता कहे हैं विशेष रूप से द्रव्य, क्षेत्र, काल के अनुसार स्व विवेक एवं अन्य शास्त्रों से जान लेना चाहिये।

जिज्ञासा 45. आहार देते समय एक आदर्श/विवेकी दाता किन–किन बातों का ध्यान रखता है? बताने की कृपा करें।

समाधान: आहार देते समय ध्यान रखने योग्य बातें –

1. द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि नियामक है, जहाँ चार प्रकार की शुद्धि हो, तभी वहाँ चौका शब्द सार्थक हो सकता है।

2. चौके के स्थान पर प्राकृतिक प्रकाश पर्याप्त मात्रा में हो, दुर्गन्ध न हो वह स्थान शुद्ध हो, वहाँ अपवित्र पदार्थ न पड़े हों, जूते–चप्पल आदि बाथरूम, पखाना, अशुद्ध वस्त्र आदि न हों।

3. उक्त स्थान में प्राकृतिक वायु का गमनागमन अबाधित होता रहता हो। वहाँ से सार्वजनिक व्यक्तियों का आवागमन न हो।

4. अन्न शुद्धि (सड़ा, गला, घुना, अभक्ष्य, जूठा विवर्णयुक्त, बेस्वाद न हो) होना चाहिए।

5. जल शुद्धि के लिए जल मोटे दुहरे छन्ने से छना हो, जीवानी (बिलछानी) को यथास्थान पहुँचा देना चाहिए, जल नलादि का न हो, जल उबला हुआ (24 घंटे की मर्यादा वाला) हो।

6. आहार बनाते समय ईंधन शुद्ध (कण्डे, घुनी लकड़ी, चमड़े के वार्सल युक्त स्टोव या अन्य अशुद्ध पदार्थ का प्रयोग नहीं किया गया) हो।

7. आहार बनाने वाला दाता स्वस्थ, नहाधोकर, शुद्ध, स्वच्छ कपड़े पहन कर ही चौके में कार्य करें, अशुद्ध वस्त्रों से, अस्वस्थ या अशुद्धि की अवस्था में चौके का कार्य न करें।

8. दाता के नाखून बड़े–बड़े व गंदे न हो, नेलपॉलिश, लिपिस्टिक, क्रीम सेन्ट आदि का भी प्रयोग न करें एवं दाता को चौके में जाने से पूर्व चर्बी युक्त साबुन से नहीं नहाना चाहिए अन्यथा अशुद्ध ही कहलायेगा।

9. दाता ध्यान रखे–उसके अंग भंग न हो, उंगली आदि कटी न हो, शरीर से

बहता हुआ पसीना खाद्य सामग्री से स्पर्शित न हो। (पसीना आये तो उसे अलग जाकर पोंछ लेना चाहिए, पुनः हाथ धो लेना चाहिए।)

10. ग्रहण काल, शोक काल, रात्रि काल आदि वैकाल अथवा सामायिक स्वाध्याय, देववंदना आदि के समय को टालकर शुद्ध काल में ही आहार देना चाहिए।

11. "श्रद्धा, भक्ति, समर्पण, विनय, वात्सल्य, करुणा" आदि समीचीन भावों से युक्त होकर तथा दुर्भावों से रहित होकर ही दान देना चाहिए।

12. क्रोध, मान, मायाचारी, लोभ, विषय वासना युक्त, आर्त–रौद्र ध्यानजन्य परिणाम, शल्यमय परिणाम या हिंसा–झूठ–चोरी–कुशील–परिग्रह के या अप्रशस्त राग या द्वेष रूप परिणाम कुभाव कहलाते हैं। इन कुभावों से रहित होकर ही आहारादि दान देना चाहिए।

13. आहार में दी जाने वाली वस्तु परिणामों में विशुद्धि को वृद्धिगंत करने वाली, मौसम, स्वास्थ्य, अवस्था व प्रकृति के अनुकूल प्रमाद की विनाशक, शुद्ध, प्रासुक व मर्यादित होनी चाहिए।

14. आहार में देय पदार्थ अपक्व, अतिपक्व, दुर्गम पाच्य, अपाच्य, विवर्ण–कुवर्ण युक्त विरस, विगंध, विवर्ण, अशोभनीय, निंद्य, संक्लेशकारक, रोगोत्पादक, प्रकृति व मौसम के प्रतिकूल नहीं होने चाहिए।

15. उत्तम दाता वह होता है, जिसके परिणाम क्षमा, मार्दव सरलता, सहजता, संतोषयुक्त श्रद्धा हो भक्ति व समर्पण रूप हों। दान के समय परिणाम कषाय–क्लेशजन्य न हों।

16. दाता मूर्ख न हो, हीन कुल वाला, कलंकित हीनाचरण युक्त न हो, अपाहिज विकलांग न हो, कंजूस, दरिद्र, निंद्य, दान देने में असमर्थ, निंद्य–व्यवसायी, बहु हिंसा–अनुमोद–कर्त्ता अथवा कराने वाला न हो, जैन कुल के प्रतिकूल आचरण करने वाला न हो।

17. दाता जुकाम, खाँसी, ज्वर, कुष्ठरोग, भंगदर, बवासीर, कैंसर, टी.बी. (क्षयरोग) आदि भयंकर रोग से पीड़ित न हो। गूंगा, अंधा, काना, बहरा, लंगड़ा, लूला न हो।

18. दाता माँ के समान वात्सल्य से युक्त श्रद्धा भक्ति विवेक से युक्त आहारदान की क्रिया में कुशल, ग्लानि को जीतने वाला, प्रमोदी, प्रसन्नता से युक्त होना चाहिए।

19. आहार देते समय दाता फटे–पुराने या बिल्कुल कोरे कपड़े धारण न करें, धुले हुए वस्त्र ही होने चाहिए। बाल खुले न हों। सिर को ढ़ँक कर ही

विवेकी दाता आहार देता है।

20. आदर्श चौका वह कहलाता है, जहाँ आहार सम्बन्धी कार्य सूर्योदय के 2 घड़ी (48 मिनट) के बाद प्रारंभ होता है तथा सूर्यास्त के लगभग 2 घड़ी पूर्व ही समाप्त हो जाता है।

21. विवेकी दाता/श्रावक वह कहलाता है जो चौके को सूना नहीं छोड़ता, आहार की सामग्री को स्वच्छ वस्त्र से ढ़ाँक कर पाटे पर रखता है, जिससे मक्खी आदि न बैठ सकें।

22. आहार देते समय धवल वस्त्र धारण करने वाला उत्तम, पीत वस्त्र वाला मध्यम, हरित, नील, गुलाबी आदि वस्त्र वाला जघन्य, काले वस्त्र धारण करने वाला निंद्य/निकृष्ट दाता होता है।

23. विवेकी दाता गीले वस्त्रों से, अपूर्ण वस्त्रों से अति छोटे या बड़े वस्त्रों को पहनकर या रेशम के वस्त्र या किराये आदि के वस्त्रों को पहनकर आहार नहीं देता।

24. सुविवेकी दाता चौके में नीचे देखकर चलता है, किसी कार्य में जल्दबाजी या प्रमाद नहीं करता, गर्म–दूध–पानी–ऊकाली (काढ़ादि क्वाथ) को कभी मुँह से नहीं फूंकता। क्यों कि मुँह से फूंकने से थूक उचटने से वह वस्तु अभक्ष्य ही हो जाती है।

25. दाल, सब्जी, खिचड़ी, हलुवा, रबड़ी, भात आदि स्निग्ध पदार्थों को चम्मच से ही देना चाहिए, हाथ से नहीं, तथा अन्य पदार्थ, रोटी, फल, लड्डू या मुनक्कादि यदि हाथ से दे रहे हैं, तो उन्हें भी अधिक समय तक हाथ में नहीं रखना चाहिए। हाथ की ऊष्मा का पदार्थ पर भी प्रभाव पड़ता है।

26. कभी भी दाता को बांये हाथ से या केवल दायें हाथ से आहार नहीं देना चाहिए अपितु दांये हाथ को मुख्य करके बांये हाथ को साथ में लगाते हुए दोनों हाथों से ही आहार देना चाहिए।

27. आहार देते समय दाता को चाहिए कि आहार इस प्रकार दे कि वस्तु पात्र की अंजुलि के बाहर न गिरे एवं अति विलम्ब या अतिशीघ्रता से आहार न देकर विवेकपूर्वक समयानुसार आहार देना चाहिए।

28. चौके में दाता ध्यान रखे कि पाटा या बर्तन या मेज–चौकी आदि को इध र–उधर न सरकायें। अन्यत्र रखना हो तो उठाकर ही रखना चाहिए क्योंकि सरकाने/घसीटने से जीवों की हिंसा भी संभव है।

29. चौके में प्रज्जवलित अग्नि न हो, कूलर, हीटर, पंखा आदि भी चलते हुये न हों (चालू न हों), कृत्रिम विद्युत जन्य प्रकाश न हो। प्राकृतिक प्रकाश ही होना चाहिए।

30. विवेकी दाता को चाहिए कि वह कोई भी पदार्थ देते समय देख ले कि कहीं

वह पदार्थ (दूध, जल, सब्जी, खिचड़ी आदि) अतिगर्म अथवा अतिशीतल न हो जो कि पात्र के लिए प्रतिकूल हो।

31. उत्तम दाता को अपनी शुद्धि, द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव की शुद्धि का विशेषतया ध्यान रखना चाहिए। अशुद्ध वस्त्र वाले व्यक्तियों से दूर ही रहें। चौके को स्पष्ट करने वाली लाईन अति स्पष्ट दिखायी देना चाहिए।

32. चौके में शुद्ध वस्त्रधारी ही प्रवेश करें व कार्य करें, अशुद्ध वस्त्र वाले नहीं। स्वयं चौके में दाता क्रमशः आहार देकर एक तरफ होते जाएं, भीड़ बनाकर सामने खड़े न रहें, भीड़ बनाने से असावधानी से अंतराय की संभावना रहती है।

33. सत्पात्रों को अति गरिष्ठ, वात, पित्त, कफ वर्धक, विरस, घुना हुआ, दुर्गन्धित, अन्य के लिए संकल्पित या उन्हीं के उद्देश्य से बनाया हुआ, बासा, नीचे गिरा हुआ, दुर्जनों द्वारा लाया हुआ, जमीन पर रखा हुआ आहार नहीं देना चाहिए।

34. शुद्ध वस्त्र पहनने के उपरान्त यदि मल मूत्र का विसर्जन किया हो या गंदगी, गोबर, पक्षी की बीट या शौचालय पर पैर पड़ गया हो या नाली के पानी में पैर पड़ गया हो अथवा मृत जीव चींटी, मक्खी, मच्छर, कृमि आदि जीव से भी स्पर्शित हो गया हो तो वस्त्र पुनः बदल लेना चाहिए।

35. अपनी प्रासुक, शुद्ध, मर्यादित वस्तु को निराकुलता पूर्वक, श्रद्धा, भक्ति, विनय व विवेक पूर्वक सावधानी से देना चाहिए। हाथ से ग्रास न गिरे, अंजुलि में रखा ग्रास न उठायें, क्योंकि ऐसा करने से भी मुनिराज का अंतराय हो जाता है।

36. लज्जा से, भय से, घमण्ड से, लोभ से, छलकपट से, अति घूंघट निकालकर, दुपट्टे को दूर रखकर आहार देना भी दोषप्रद है। इसके साथ–साथ इसके समकक्ष अन्य दोषों से भी विवेकी श्रावक को बचना चाहिए।

37. आहार देने से पूर्व दाता प्रथम हाथ जोड़कर ''मन शुद्धि, वचन–शुद्धि, काय शुद्धि, आहार जल शुद्ध है'' शुद्धि बोलें, नमस्कार करें, पुनः प्रासुक जल से हाथ धोकर स्वच्छ कपड़े से हाथ पोंछ ले, तभी आहार देना चाहिए। हाथ में वस्तु लेकर शुद्धि बोलने से अपने मुँह का थूक उचटकर वस्तु पर गिर सकता है।

38. विवेक दाता चौके में कम से कम वचनालाप करता है अर्थात् आवश्यक शब्द ही बोलें, अनावश्यक वचनालाप न करें।

39. अनेक साधुओं को आकुलतापूर्वक, जल्दबाजी या अशुद्धि में आहार देने की अपेक्षा से एक साधु को निराकुलता पूर्वक, सावधानी व शुद्धि पूर्वक आहार देना अधिक पुण्यास्रव का जनक है।

40. एक चौके से दूसरे चौके में जाते समय रास्ते में देखकर चलें, पैर धोकर ही चौके में प्रवेश करें। अशुद्धि की आशंका होने पर चौके में प्रवेश न करें। दौड़कर आने से शुद्धि नहीं रह पाती है।

41. आहार दान देकर अपने अहं की पुष्टि के लिए प्रचार प्रसार करना श्रावक के अविवेक की निशानी है। धर्म प्रभावना हेतु भजन करना, आरती उतारना, अन्य श्रावकों को भोजन कराना दोषप्रद नहीं है।

42. कोई वस्तु कम हो जाने पर अथवा खत्म हो जाने पर जोर–जोर से चिल्लाना नहीं चाहिए, अपितु अन्य वस्तुओं को देकर आहार कराना चाहिए। उस समय चूल्हादि नहीं जलाना चाहिए।

43. ''गर्म दूध आदि पदार्थों के बाद'' ठण्डा पानी देना अथवा खट्टी वस्तु नींबू आदि या शीतल पेय रस आदि देना भी श्रावक के अविवेक को सिद्ध करता है।

44. फलों के ऊपर से पानी या घी, दूध, मावा, काढ़ा, मीठा व रस के ऊपर पानी देना भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है अथवा शीतल या खट्टे या कषायले पदार्थों के ऊपर से दूध, घी देना श्रावक की अज्ञानता का द्योतक है।

45. दही मिला गुड़, छाछ या दही के ऊपर से दाल आदि पदार्थ देने वाला श्रावक भी मूर्खता को प्रकट करता है। नवनीत, फूल, कच्चे फल, मौसम के प्रतिकूल या साधु की प्रकृति के प्रतिकूल आहार देना भी श्रावक की अज्ञानता का द्योतक है।

46. चौके में मारो, काटो, चीरो, चूरा–चूरा कर दो, टुकड़े–टुकड़े कर दो, पीस लो, गर्म कर लें, गुच्च दो, रगड़ दो, मसल दूँगा इत्यादि अशोभनीय शब्दों का प्रयोग भी न करें।

47. आहार–सामग्री ऊँचे स्थान पर रखें जिससे श्रावक के पैर या वस्त्र न टकरायें, छींटे आदि न पड़े। चौकी, मेज, पाटे आदि पर सामान सावधानी से रखें, जिससे कोई पदार्थ या बर्तन नीचे न गिरें।

48. साधु को आहार देते समय देने से मना नहीं करना चाहिए, न प्रसाद आदि माँगना चाहिए, न एक दूसरे से सामान छुड़ाना चाहिए और आहार देते समय ऊँचे से आहार देना चाहिए हाथ से हाथ नहीं छूना चाहिए।

49. साधु की बराबरी या ऊँचे आसन पर बैठना, चौकी–पाटा–मेज वस्त्र–पेटी–बर्तन आदि घसीटना, कपड़ा फाड़ना, पोंछा लगाना, खिड़की–दरवाजे खोलना या बंद करना, सब्जी फल बनाना, चूल्हा जलाना, हीटर–बल्ब जलाना, कूलर–पंखा चलाना, धक्का–मुक्की करना, कुपित होना, अहं का पोषण करना इत्यादि क्रियाएं अज्ञानता की ही द्योतक कही जाती हैं।

50. शुद्ध वस्त्र पहनते समय दाता सम्पूर्ण अशुद्ध वस्त्रों को उतार करके ही शुद्ध वस्त्रों को धारण कर। अशुद्धि में शुद्ध वस्त्र न छुऐं एवं शुद्ध वस्त्र पहनने के लिए गीली तौलिया आदि का प्रयोग करें।

51. साधुओं को उबला जल देना चाहिए। ठंडी वस्तु के बाद गर्म व गर्म के बाद ठण्डी व खट्टी वस्तु देना भी योग्य नहीं है। वमन होने पर नींबू, पिपरमेंट, कर्पूर को सुँघाना या कपड़े से हवा करना, वायु–विकार की स्थिति में पीठ पर, पसलियों पर हाथ फेरना भी श्रावक का परम विवेक है।

52. वृद्ध साधुओं को जिनके दांत नहीं है या छाले या दांतों की बाधा से युक्त साधुओं को दूध, छांछ, दाल आदि में रोटी गलाकर देना भी श्रावक का विवेक है।

53. एक बार में बहुत से ग्रास देना, अंजुलि को पूरा भर देना, अतिनिकट या अतिदूर से अथवा ऊँचे–नीचे खड़े होकर आहार देना, अति बातें करना, अमर्यादित हँसना आदि बातें श्रावकों के अविवेक को ही सूचित करती हैं।

54. विवेकी दाता चौके में शुद्धता के साथ–साथ स्वच्छता का भी ध्यान रखता है। दाता व्यर्थ में पानी आदि न फैलाये, सामान फैलाकर न रखे सामान एक साथ पूरा न निकाले। दूध–रस आदि पदार्थ जग, लोटा आदि बड़े बर्तनों से न देकर गिलास आदि से देना उचित है।

55. विवेकी दाता स्वयं ही अधिक देने का प्रयास नहीं करता अपितु वस्तु को शोध–शोध कर अन्य श्रावकों को भी विधिपूर्वक दिलवाता है। ''मैं ही अकेला दूँगा, तुम सब पीछे बैठो'' ऐसे वचन अविवेकी दाता ही कहता है।

56. श्रद्धा भक्ति पूर्वक पड़गाहन करने पर भी साधु की विधि न मिले, कोई साध J न आयें तो भी विवेकी दाता को संतोष धारण करना चाहिए, परिणाम संक्लेशित नहीं करें क्योंकि अपना कर्त्तव्य पालन करने से भी पुण्य का आस्रव होता है यदि चाहें तो अन्यत्र साधु के पास आहार देने जा सकते हैं।

57. सर्दी, जुकाम, खांसी, बुखार आदि की स्थिति में दही, केला, ककड़ी, ठंडे रस, टमाटर, चावल, ठण्डाई, शिकंजी, शरबत आदि नहीं देना चाहिए अपितु इस समय पर गर्म–गर्म मूंग की दाल, खिचड़ी, हल्दी–तुलसी की पत्ती काली मिर्च– सोंठ– पीपल मिला हुआ दूध, लौकी, तौरई, अरहर की दालादि एवं आहार के अंत में लौंग, अजवाइन आदि विशेष लाभदायक होती है।

58. गर्मियों के दिनों में गुड़, अजवाइन, लौंग, सौंठ, राजगिर (रामदाना) मैंथी,

मूंगफली, ज्वार, बाजरा, तिली आदि पदार्थ उतने लाभदायक नहीं होते जितने कि सर्दी/वर्षा के दिनों में लाभदायक होते हैं।

59. गर्मियों के दिनों में आहार के साथ–साथ बीच–बीच में रस–पानी दूध एवं पेय पदार्थ या छांछ, दही शिंकजी ठण्डे पदार्थ आदि फल आदि विशेष लाभदायक होते हैं। गर्मियों के आहार में अधिक महत्वपूर्ण जल होता है।

60. उपवास या अंतराय के बाद पारणा के दिन साधु को जितना सहन हो सके उतना गर्म पानी, उकाली, दूध आदि लाभदायक होता है, ठण्डा जल, शिकंजी, दही, ठण्डाई आदि नहीं।

61. पेट दर्द, कब्ज आदि के समय दूध में उबाले हुए बीज सहित मुनक्का, पपीता, मैंथी, अजवाइन, गुड़, फल चावल के दाने के बराबर पिपरमेंट देना भी लाभदायक होता है। उस समय तले पदार्थ पकवान, भात, उड़द की दाल, दूध, रोटी, केला आदि लाभप्रद नहीं होते।

62. जो श्रावक आहार देने में असमर्थ है वह आहार दिलाता है, जो आहार दान देने के लिए प्रेरणा देने में भी असमर्थ है, वह अनुमोदना से पुण्यार्जन करता है, समर्थ श्रावक को अनुमोदना से विशेष पुण्यार्जन नहीं होता। अनुमोदना तो प्रायः परोक्ष में की जाती है किन्तु आहारादि दान में असमर्थ होने पर प्रत्यक्ष में की जाती है।

63. आदर्श दाता में 21 सामान्य गुण (9 नवधा भक्ति + 7 गुण + 5 आभूषण) एवं 21 विशेष गुणों का होना आवश्यक है।

64. आदर्श दाता का आहार के समय प्रसन्नचित्त, मधुरवाणी, मन्द–मन्द मधुर मुस्कान बिखेरता हुआ आनन, विशुद्ध मन, श्रद्धा भक्ति व समर्पण से परिपूर्ण गद्‌गद् हृदय, विनय तथा भद्रतायुक्त मुद्रा होनी चाहिए।

65. उत्तम दाता भोजन में नमक मिर्च मसाला आदि जितना आप स्वयं लेता है उतने ही अनुपात मे डालता है, अत्यन्त कम या अत्यधिक नहीं।

66. उत्तम दाता को काली मिर्च, जीरा, नमक, अजवाइन, लवंग आदि बारीक पीसकर ही डालना चाहिए। जिससे काली मिर्च में मक्खी या चूहे की बीट का, सोंफ जीरा में कीड़े का या तिरूला/पटा/सिरोरी का, नमक में कंकड़ का, अजवाइन लवंग आदि में मच्छर, चींटी आदि का भ्रम न हो।

67. उत्तम दाता सेब, नाशपाती, अंगूर, आम, पपीता, चीकू, खीरा, अमरूद, संतरा आदि फल साबुत नहीं देता व छोटे पीस करके ही देता है। वह साधक के आने से पहले ही तैयार रखता हे उनके आने के उपरांत आरंभादि नहीं करता।

68. उत्तम दाता टमाटर, नीबू, अमरूद, मिर्च, ककड़ी आदि फल बीज निकालकर ही देता है यदि उन्हें अग्नि पक्व प्रासुक कर लिया है तो बीज सहित भी देता है। वह अनार आदि फलों के बीजों का रस निकालकर ही देता है जिससे दानों की प्रासुक व अप्रासुक होने की शंका भी न रहे।

69. उत्तम दाता चौके में बनी सभी आहार सामग्री साधु को दिखाता है जिस वस्तु का त्याग होता है उसे वे निकलवा देते हैं उत्तम दाता कभी यह नहीं कहता कि ये वस्तु मत दो, ये नहीं लेंगे..... इत्यादि शब्द बोलने वाला श्रावक अपनी मूर्खता ही प्रकट करता है।

70. दिगम्बर साधु के लिए अष्टमी, चतुर्दशी में हरी के त्याग का कोई नियम नहीं है। वे अतिथि होते हैं उनके लिए सभी दिन पर्व के समान है। उन्हें हरी से, विशेष रसों से नहीं शुद्ध भोजन से प्रयोजन है अतः श्रावक आहार में जो शुद्ध वस्तु देता है वही साधुजन ले लेते हैं।

71. पीतल, ताँबा, कांसा आदि के बर्तनों में दही, छांछ या अन्य खटाई युक्त पदार्थ नहीं रखना चाहिए। चौके में मिट्टी लोहा, एल्यूमीनियम, प्लास्टिक आदि निकृष्ट धातुओं के बर्तन से भी आहार नहीं देना चाहिए। उत्तम एवं सामर्थ्यवान दाता यदि उसके पास सहजोपलब्ध हैं तो स्वर्ण, रजत, तांबा आदि के बर्तन से आहार देता है।

72. उत्तम दाता रसोई गृह को गोबर से नहीं लीपता और न ही पानी फैलाकर गीली रखता है अपितु वह स्थान स्वच्छ रखता है जिससे वहाँ बैठने में असुविध न हो।

73.आदर्श दाता के रसोई गृह में आलू, प्याज, गाजर, मूली, लहसुन, गोभी, बैंगन इत्यादि अभक्ष्य पदार्थों का प्रवेश भी नहीं होता और न ही शंख, सीप आदि की झालर, ऊनी रेशमी वस्त्र, टाट की पट्टी या खाद सीमेंट की बोरी का चंदोवा मिलेगा। और न ही चौके में अशुद्ध वस्त्र टंगें मिलेंगे।

74. आदर्श दाता के चौके में किसी देवगति के देवी, देवता, कुदेवों या भोगी प्राणियों के अश्लील चित्र या मूर्ति भी नहीं होगी। टी. वी., फ्रिज, कूलर, पंखा, पेटी, बिस्तर, पंलग आदि भी चौके के अन्दर नहीं, सीमा रेखा के बाहर ही मिलेंगे।

75. जब तक मुनिराज आदि का आहार न हो जाए तब तक असंयमी जनों को या ब्रह्मचारी आदि को वहाँ भोजन कराना प्रारम्भ न करें। कदाचित् अत्यन्त अनिवार्यता है तो देशव्रती, ब्रह्मचारी आदि को किसी दूसरे कमरे आदि में भोजन करा दें। मुनिराज आदि के सामने असंयमी के भोजन करने या कराने से उनकी (सत्पात्रों की) अविनय होती है।

76. विवेकशील समझदार बालक/बालिका आठ वर्ष के उपरान्त आहार दे सकते हैं यदि समझ नहीं है तो सोलह वर्ष के हो जाएं तब भी आहार नहीं देना चाहिए।

77. आहार के समय दाता स्वतः ही अभक्ष्य पदार्थों का त्याग कर देना चाहिए जिससे मुनिराज को आपसे त्याग नियमादि के लिए आग्रह न करना पड़े। निज शक्ति अनुसार व महाराज श्री के संकेतानुसार किये गये त्याग व लिये गये नियमों का दृढ़ता से पालन करना चाहिए। व्रत, संयम, नियम लेकर उनका खण्डन करने से महापाप लगता है।

78. जिस व्यक्ति का सप्त व्यसन का त्याग नहीं हो, अष्ट मूल गुण के पालन करने से रहित हो, धूम्रपान, निशिभोजन, आलू–प्याज आदि अभक्ष्य का त्याग नहीं हो अथवा कर भी न सकें तो उसे चौके में प्रवेश नहीं करना चाहिए। दूर से ही अनुमोदना कर लेना चाहिए।

79. मिथ्यादृष्टि देवी देवताओं का उपासक, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म की भक्ति श्रद्धा से रहित, जाति, कुल वंश से स्खलित, श्रेष्ठ समाज द्वारा निष्कासित श्रावक को भी चौके में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

80. उत्तम दाता किसी दूसरे श्रावक के चौके में आहर देने कभी खाली हाथ नहीं जाता अपितु अपनी शुद्ध वस्तु लेकर ही जाता है एवं उस श्रावक से अनुमति लेकर ही चौके में प्रवेश करता है। यदि उस श्रावक की वस्तु भी देता है तो बिना पूछे नहीं देता है।

81. जब मुनिराज चौके में प्रवेश करें तो चौके में जो भी श्रावक जन उपस्थित हों, वे खड़े होकर हाथ जोड़कर, विनय भक्ति पूर्वक शुद्धि बोलें व कहें 'हे स्वामिन्! भोजनशाला में प्रवेश कीजिए। बाहर खड़े हुए (आहार देखने आये) श्रावक भी विनय से हाथ जोड़ लें।

82. पड़गाहन करते समय श्रावक समस्थान पर खड़े होकर पड़गाहन करें, ऊँचे स्थान या सीढ़ियाँ आदि पर अथवा अति नीचे स्थान पर खड़े न हों। उस स्थान पर गंदगी, घास, जीव–जन्तु, गंदे कपड़े आदि नाली का गंदा पानी आदि भी न बह रहा हो। उत्तम दाता वहाँ पर मंगल स्वरूप चौक भी पूर लेता है। यह उसकी विशेष भक्ति का प्रतीक है।

83. उत्तम दाता आहार देते समय रोटी के न तो अधिक छोटे–छोटे पीस करता है, न अति बड़े–बड़े। अपितु वह एक रोटी के चार भाग करता है। एक बार में 2–2 कँवल देता है तथा अंजुलि को अतिपूर्ण नहीं भरता क्योंकि वह जानता है कि ऐसा करने से वस्तु गिरेगी व शोधन भी सम्यक् प्रकार से नहीं हो सकेगा।

84. उत्तम दाता आहारोपरांत मुनिराज आदि साधकों के हाथ–पैर अच्छी तरह धुलाकर स्वच्छ वस्त्र से पोंछ देता है। कमण्डलु में 24 घंटे की मर्यादा वाला उबला हुआ

जल भी भर देता है तथा उन साधु जनों को वसतिका तक छोड़ने भी जाता है।

85. उत्तम दाता आहारोपरांत उन पात्रों के आर्यिका जी, ऐलक जी, क्षुल्लक जी, क्षुल्लिका जी के वस्त्र भी अपने घर धोने के लिए ले जाता है तथा वह प्रासुक जल से ही वस्त्र धोता है सोडा या सर्फ के द्वारा वस्त्र धोने पर उस क्षारीय जल को नाली में नहीं बहाता अपितु ऐसे स्थान पर डालता है जिससे वह जल वहीं सुख जाए।

86. उत्तम दाता आर्यिका माता जी, ऐलक जी, क्षुल्लक जी, क्षुल्लिका जी के वस्त्र स्वयं धोता है तो वह उसमें नील व टिनोपालादि का प्रयोग नहीं करता है क्योंकि वह जानता है कि ये त्यागी व्रती हैं, संसार–शरीर–भोगों से विरक्त हैं, पांच पापों से विरक्त हैं। नील बहु हिंसा से बनती है और टिनोपाल वस्त्रों में आसक्ति पैदा करता है अतः दाता यह भी पूर्व में ध्यान रखता है।

87. उत्तम दाता मुनिराज आदि उत्तम पात्रों के आहारोपरांत ब्रह्मचारी आदि को भी विनय पूर्वक आहार हेतु ले जाकर भक्ति सहित आहार कराता है।

88. मुनिराज के आहारोपरांत शेष भोजन जूठा नहीं कहलाता क्योंकि मुनिराज आदि तो हाथ में ही भोजन करते हैं अतः आहार के बाद बचा हुआ अवशिष्ट भोजन प्रसाद रूप अवश्य ही ग्रहण करना चाहिए। यह अवशिष्ट भोजन भी परम्परा से मुक्ति का कारण है।

89. विवेकी दाता आहार देते समय खाँसी, छींक, डकार, जम्हाई आदि क्रियाएं सत्पात्र के सामने नहीं करता। वहाँ से हटकर एक ओर हो जाता है व पुनः आहार देने से पहले प्रासुक जल से हाथ धोकर स्वच्छ कपड़े से पोंछ भी लेता है।

90. दाता को चाहिए कि वह चौके का कार्य शुरू करने से पहले देवदर्शन कर आये। उत्तम दाता चौके के कार्य की व्यस्तता होने पर भी मन्दिर को टालता/भूलता नहीं है।

91. आहार देते समय जमीन पर यदि कोई वस्तु गिर जाती है तो विवेकी दाता उसे उठाकर एक ओर कर देता है व पुनः स्वच्छ प्रासुक जल से हाथ धोकर ही आहार देने में प्रवृत्त होता है।

92. विवेकी दाता अतिरिक्त शोला के कपड़े भी रखता है वह जानता है कि कदाचित् पहने हुए वस्त्र अशुद्ध हो गये तो उनका प्रयोग किया जा सकता है अथवा अन्य

श्रावक जो आहार देने के इच्छुक है वे भी उन वस्त्रों का प्रयोग कर सकते हैं।

93. विवेकी दाता जब भी प्रासुक जल से हाथ धोता है तो वह योग्य व निर्धारित स्थान पर ही हाथ धोता है यहाँ वहाँ नहीं। ऐसा करने से वह स्थान स्वच्छ बना रहता है व किसी के फिसलने की संभावना भी नहीं रहती है।

94. चौके में चींटी आदि सूक्ष्म जीवों की रोकथाम के लिए कर्पूर, हल्दी आदि का प्रयोग करना उचित रहता है क्योंकि ऐसा करने से आहार–सामग्री उन जीवों से सुरक्षित रहती है व जीव वध की भी संभावना नहीं रहती।

95. उत्तम दाता आहार देते समय एक बार में अपने हाथ में एक ही वस्तु रखता है वह अन्य दाताओं को भी ऐसा करवाता है जिससे असावधानी वश किसी वस्तु के गिरने का भय भी नहीं रहता और उसका शोधन भी भली–भाँति हो जाता है।

96. सत्पात्रों के पाद प्रक्षालन के बाद दाता जब प्रक्षाल को अपने उत्तमांगों में लगा लेता है तो अन्य श्रावक जनों के लिए वह उस बर्तन को चौके के बाहर रख देता है।

97. उत्तम दाता कभी भी पूजन के प्रयोग में लिये गये पट्टे, चौकी आदि पर भूल से भी पैर नहीं रखता क्योंकि वह विनयशील होता है।

98. चौके में प्रयोग किये जाने वाले बर्तनों पर से दाता चिट, स्टीकर आदि हटा देता है।

99. चौके में प्रयुक्त बर्तन चिकने, गंदे लुढ़कने वाले, टूटे, फूटे, गीले वा चटके हुए न हों। क्यों कि ऐसा होने से भोजन सामग्री के फैलने, टपकने आदि की संभावना रहती है।

100. शुद्ध वस्त्र पहनने से पूर्व दाता शरीर की शुद्धि का भी ध्यान रखें। कलावा (धागा) जनेऊ, गण्डा आदि यदि पहने हों तो उन्हें शुद्ध करके ही शुद्ध कपड़े पहनें।

101. उत्तम दाता चौके में लाख की चूड़ियों आदि, कपड़े की बिन्दी, नकली या अशुद्ध दांत का प्रयोग नहीं करता है। महिलाएं चौके में कुमकुम या चंदन की ही बिन्दी लगाऐं।

आचार्य भगवन्तों का उपदेश

1. **अहारौषध जीव रक्षण परि, ज्ञानानि ये श्रावकाः,**
पात्रेभ्यो वितरन्ति भाव सहिताः, स्वीकृत्य जैनं व्रतं।
ते विद्याधर चक्रवर्ती पदवीं, भुक्त्वा सुराणां श्रियं,
नैर्वाणं परमार्थ सौख्य मतुलं, गच्छन्ति धमाङ्किताः ॥30॥30॥ *स.श्लो.सं.*

अर्थः जो श्रावक जैन व्रत को स्वीकृत कर, भाव सहित होते हुए पात्रों के लिए आहार, औषध, अभय और ज्ञान दान देते हैं, वे धर्मात्मा विद्याधर तथा चक्रवर्ती का पद एवं देवों की लक्ष्मी का उपभोग कर मोक्ष सम्बन्धी अनुपम परमार्थ सुख को प्राप्त होते हैं।

2. **सौधर्मादिषु कल्पेषु भुञ्जते स्वेप्सितं सुखम्।**
मानवाः पात्र दानेन मनोवाक्काय शुद्धितः ॥06॥103॥ *स.श्लो.सं.*

अर्थः मन वचन काय की शुद्धि पूर्वक दिये गये पात्र दान से मनुष्य सौधर्मादि स्वर्गों में मनोवांछित सुख का उपभोग करते हैं।

3. **तत एभ्य सुजायन्ते, चक्रिणो वार्द्ध चक्रिणः।**
इक्ष्वाक्वादिषु वंशेषु, पात्र दान फलान्नरः ॥07॥103॥ *स.श्लो.सं.*

अर्थः वहाँ से आकर मनुष्य पात्र दान के फल से चक्रवर्ती अथवा अर्द्धचक्रवर्ती होते हुए इक्ष्वाकु आदि वंशों में उत्पन्न होते हैं।

4. **दानेन प्राप्यतेस्वर्गो दानेन सुख मश्नुते।**
इहामुत्र च दानेन पूज्यो भवति मानवः ॥08॥103॥ *स.श्लो.सं.*

अर्थः आहारादि दान से स्वर्ग प्राप्त होता है, दान से मनुष्य सुख का उपभोग करता है दान से इहलोक व परलोक में पूज्य होता है।

5. **आहार दान मेकंहि, दीयते येन देहिना।**
सर्वाणि तेन दानानि, भवन्ति विहितानि हि॥53॥103॥

अर्थ- जिस प्राणी के द्वारा एक आहार दान दिया जाता है उसके द्वारा अन्य सब दान भी निश्चय ही दिये जाते हैं।

6. **सत्पात्र दानेन भवेद् धनाढ्यो, धन प्रकर्षेण करोति पुण्यम्।**
पुण्याधिकारी दिवि देवराजः, फन र्धनाढ्यः पुनरेव दानी ॥110॥103॥

अर्थ- सत्पात्र को दान देने से मनुष्य धनाढ्य होता है, पुनः धन की अधिकता से

पुण्य प्राप्त करता है, पुण्य का अधिकारी मनुष्य स्वर्ग में इन्द्र होता है वहाँ से आकर पुनः धनाढ्य होता है और पुनः दानी होता है।

7. नास्ति क्षुधा समो व्याधि, भेंषजं वास्य शान्तये।
अन्नमेवेति मन्तव्यं तस्मात् तदेव भेषजम् ॥54॥103॥

अर्थ- क्षुधा के समान रोग नहीं है और उसकी शांति के लिए आहारदान के समान औषधि नहीं है इसलिए अन्नदान देना ही औषधि दान मानना चाहिए।

8. विनाहारै बंलं नास्ति, जायते नो बलं विना ।
सच्छास्त्राध्ययनं नास्ति तस्माद स्यान्तदात्म्यकम्॥55॥103॥

अर्थ- आहार के बिना बल नहीं मिलता और बल के बिना समीचीन शास्त्रों का अध्ययन नहीं होता। अतः आहार दान साधु के लिए आत्म हितकारी है।

9. अभयं प्राण संरक्षा, वुभुक्षा प्राण हारिणी ।
क्षुन्निवारणमन्नं, स्यादन्न मेवाभयं ततः॥56॥103॥

अर्थ- प्राणों की रक्षा करना अभय दान है, क्षुधा प्राणों को हरने वाली है और आहार क्षुधा का निवारण करने वाला है अतः आहार दान ही अभय दान है।

10. आहार दानेन लभ्यन्ते, तिजगच्छ्री सुखादयः।
नृ भोगभूमि नाकादौ, विश्वकीर्तिः सुरार्चना॥79॥103॥

अर्थ- आहार दान से तीनों लोक की सम्पत्ति, सुखादिक, मनुष्य भव भोगभूमि तथा स्वर्गादिक, सम्पूर्ण विश्व कीर्ति और देव पूजा प्राप्त होती है।

11. भार्या सुत यशो विद्या सौख्य ज्ञान सुबुद्धयः।
श्री भूषण सुवस्त्राणि लभ्यन्ते चान्न दानतः॥80॥103॥

अर्थ- अन्न (आहार) दान से भार्या, पुत्र, यश, विद्या, सुख, ज्ञान, सुबुद्धि, लक्ष्मी, आभूषण और उत्तम वस्त्र प्राप्त होते हैं।

12. सद्यः प्रीति करं दानं, महातंङ्क विनाशनम्।
अन्न तोय समं दानं, न भूतं न भविष्यति॥81॥103॥

अर्थ- जो शीघ्र ही प्रीति को करने वाला है तथा महान आतंक को नष्ट करने वाला है, ऐसा अन्न-पानी (आहार-जल) के समान दूसरा दान न था न होगा।

13. शमः स्तवो दया धर्मः संयमो नियमो यमः।
सर्वे तेन वितीर्यन्ते, येनाहारो वितीर्यते ॥82॥103॥

अर्थ- जिसके द्वारा आहार दिया जाता है उसके द्वारा शम, स्तवन, दया, धर्म, संयम, नियम और यम सब दिये जाते हैं।

14. धर्मस्य कारणं गात्रं, तस्य रक्षो यतोऽन्नतः।
अन्न दानं ततो देयं, जन्मिनां धर्म संङ्गिनाम्॥86॥

अर्थ- धर्म का कारण शरीर है और शरीर की रक्षा अन्न से ही संभव है अतः ध र्मात्मा जीवों को अन्न दान (आहार दान) अवश्य ही देना चाहिए।

15. याऽशनेऽस्ति तनुरक्षणः शक्तिः, सा न हेममणि रत्न गणानाम्।
येन तेन वितरन्ति यतिभ्यस्तान पास्य कृतिनोऽशन दानम्॥87॥

अर्थ- चूंकि भोजन में ही शरीर रक्षण की जो शक्ति है वह सुवर्ण मणि तथा रत्नों के समूह की भी शक्ति नहीं है इसीलिए उन सबको छोड़कर कुशल मनुष्य मुनियों के लिए आहारदान करते हैं।

16. गृहस्थानामाहारदानादिक मेव परमो धर्मः।2॥111॥4॥231॥14

परमात्मप्रकाश टीका

अर्थ- गृहस्थों के तो आहार दानादिक ही परम धर्म हैं।

17. केवल ज्ञानतो ज्ञानं, निर्वाण सुखतः सुखम्।
आहार दानतो दानं, नोत्तमं विद्यते भुवि ॥88॥

अर्थ- पृथ्वी पर केवलज्ञान से बढ़कर ज्ञान, मोक्ष सुख से बढ़कर सुख और आहार दान से बढ़कर उत्तम दान नहीं है।

18. को न याति वशं लोके, मुख पिण्डेन पूरितः।
मृदङ्गो मुख लेपेन, करोति मधुरं स्वरं ॥90॥

अर्थ- लोक में कहावत है, मुख पिण्ड (मुख में प्राप्त ग्रास) से पूरित कौन मनुष्य वश को प्राप्त नहीं होगा? सभी हो जाते हैं जैसे मुख लेप से अग्रभाग में संलग्न आटे के लेप से मृदंग भी मधुर स्वर करता है।

19. पात्रे दन्तं भवेत्, सर्वं पुण्याय गृह मेधिनाम्।
शुक्तावेव हि मेघानां, जलं मुक्ताफल भवेत्॥92॥

अर्थ- पात्र के लिए दिया गया आहारादि दान गृहस्थों के लिए सर्व (सातिशय)

पुण्य के लिए कारण होता है क्योंकि मेघों का जल सीप में ही मोती होता है।

20. चतुर्विधाय संघाय दानं देयं चतुर्विधम्।
द्रव्याढ्येन गृहस्थेन यथायोग्यं शुभायवै ॥37॥

अर्थ- धन सम्पन्न गृहस्थ को कल्याण प्राप्ति के लिए यथायोग्य चतुर्विध संघ के लिए आहारादि चार प्रकार का दान देना चाहिए।

21. जिन भवनं जिन बिम्बं जिन पूजां जिनमतं च यः कुर्यात्।
तस्य नरामर शिवसुख फलानि कर पल्लव स्थानि ॥35॥ *स.श्लो.सं.*

अर्थ- जो जिनमन्दिर, जिन प्रतिमा, जिनपूजा और जैनमत के शास्त्र छपवाता है उस मनुष्य के हाथ में मनुष्य गति, देवगति के उत्तम सुख व मोक्ष सुख रूपी फल स्थित रहते हैं।

22. जिनालये च तद् बिम्बे, पूजोद्धारादि हेतवे।
सिद्धान्त लेखने चापि, धनं देयं शुभाय वै॥38॥

अर्थ- जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, पूजा, जीर्णोद्धार आदि के लिए एवं जैन सिद्धान्त शास्त्र के लिखवाने में धन का दान देना चाहिए।

23. पुण्यात्मा सद्गृहे येषां, समायान्ति मुनीश्वराः।
आहारार्थं महा पूज्या, इन्द्र चक्र धरादिभिः॥150॥

अर्थ- जिनके घर में महापूज्य मुनीश्वर आहार हेतु आते हैं वे गृहस्थ इन्द्र, चक्रवर्ती आदि द्वारा पूज्यता को प्राप्त हुए। वे गृहस्थ ही पुण्यात्मा हैं।

24. तस्माद्दत्तो वराहारो येन पात्राय भावतः।
सर्व यमादिकं तेन दत्तं ज्ञानादिभिः समः॥ *स.श्रा.*

अर्थ- इसलिए जो भव्य जीव सत्पात्रों के लिए भाव सहित आहार दान देता है मानो उसने उनके लिए यम, ज्ञान, समता आदि सब कुछ दिया है।

25. आहारदानतः सम्यक्ज्ञान, वृत्तादयो गुणाः।
वृद्धिं याति यतीशानां, यथानंदा सुध्यानतः॥34॥ *स.श्रा.*

अर्थ- आहार दान से ही सम्यक् ज्ञान व्रतादि गुण वृद्धि को प्राप्त होते हैं। यतीश्वरों (मुनिराजों) को जैसा ध्यान से आनन्द प्राप्त होता है दाता को वही दान से मिलता है।

26. औषधाख्या दानेन, नश्येत् रोगं कदंबकं।
मुनीनां व्यक्त संगानां, स्वस्थं संजायते वपुः॥

अर्थ- सर्व परिग्रह के त्यागी मुनियों को औषधि दान देने से कदंबक (भयंकर कुष्ठ कैंसर) आदि रोग भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं एवं शरीर निरोग हो जाता है।

27. धान्यं वाहन वस्तु पितृ मातृ भ्रातृ भार्यात्मजं,
चक्रित्वं सकलं शुभं भव सुखं भुक्त्वा त्रिजन्मान्तरे।
निर्वाणं कृतिनां भवेत्तदखिलमाहार दानेन तु,
सौधर्मादिक कल्पजं वर सुखं गच्छन्ति तद्दानिनः॥

अर्थ- सत्पात्रों को दान देने से भव्य जीव धन-धान्य, वाहन, राजमहल आदि विभूति, पिता, माता, भाई, श्रेष्ठ स्त्री, सुपुत्रजन्य सुख, चक्रवर्ती, तीर्थंकर, सकल सुख के कारण भूत पदों के सुखों को भोगकर सौधर्मादि स्वर्गों के श्रेष्ठ सुखों को प्राप्त करते हैं तथा तृतीय भव में निर्वाण (मोक्ष सुख) को प्राप्त होते हैं।

28. भाग्य क्षयेण क्षीयन्ते दानभोगैर्न सम्पदः।
कूपोदक विधनेन किं च जानन्ति पण्डिताः॥95॥103॥

अर्थ- भाग्य के क्षय से सम्पदायें क्षीण होती हैं दान और भोग से नहीं। कुंए के जल के समान दान करने से सम्पदाएं बढ़ती हैं, यह क्या विद्वान नहीं जानते?

29. चिन्तितं पूजितं भोज्यं क्षीयते तस्य नालये।
आहारोभक्तिनो येन दीयते व्रत वर्तिनाम्॥94॥103॥

अर्थ- जिसके द्वारा व्रती मनुष्यों के लिए भक्ति पूर्वक आहार दिया जाता है उसके घर में, इच्छित श्रेष्ठ भोजन सामग्री की कभी कमी नहीं होती है।

30. किमत्र बहुनोक्तेन लेशतोऽपि गुणप्रदम्।
वस्तु संयमिने दत्त मनन्त सुखदं भवेत्॥93॥103॥

अर्थ- इस विषय में बहुत कहने से क्या? संयमी के लिए दी गई थोड़ी भी गुण दायक वस्तु अनन्त सुख को देने वाली होती है।

31. काय स्थित्यर्थमाहारः कायो ज्ञानार्थ मिष्यते।
ज्ञानं कर्म विनाशाय तन्नाशः परमं सुखम्॥83॥

अर्थ- आहार शरीर की स्थिति के लिए, शरीर ज्ञान के लिए, ज्ञान कर्मों का नाश करने के लिए चाहा जाता है। कर्मों का नाश ही परम सुख है।

32. दाता भोक्ता बहुधनयुतः सर्व सत्वानुकम्पी,
सत्सौभाग्यौ मधुरवचनः, काम रूपातिशायी।
शश्वद् भक्त्या बुधजन शतैः सेवनीयांघ्रि युग्मो,
मर्त्यः प्राज्ञो व्यपगत मदो, जायतेऽन्नस्य दानात् ॥84॥

अर्थ- आहार दान से मनुष्य दाता, भोक्ता, प्रचुर धन से युक्त, सब जीवों पर दया करने वाला, सौभाग्यशाली, मधुरभाषी, कामदेव से भी अतिशय सुन्दर, निरन्तर भक्तिपूर्वक सैंकड़ों विद्वानों से वन्दनीय चरण युगल वाला, विद्वान एवं मद से रहित अवस्था को प्राप्त होता है।

33. आहार दानार्जित पुण्य पाकाद् दीर्घायु रारोग्य यशः सुखानाम्।
स्त्रीणां सुरूपादि महागुणनां, स्वामीभवेत् सिद्धि वधू वरश्च॥102॥103॥

अर्थ- आहार दान से संचित पुण्य के उदय से मनुष्य दीर्घायु, आरोग्य, यश, सुख, स्त्रीयों तथा सौन्दर्य आदि महागुणों का स्वामी होता है और अन्त में मुक्ति (सिद्धि) वधू का स्वामी होता है।

34. क्षुद दुःखतो देहवतां न दुखं, परंमतः सर्व शरीरनाशि ।
आहार दानं ददता प्रदत्तं, हृतं न किं तस्य विनाशनेन॥98॥103॥

अर्थ- क्षुधा से बढ़कर प्राणियों का दूसरा दुःख नहीं है क्यों कि वह समस्त शरीर का नाश करने वाला है, अतः आहार दान देने वाले ने क्या नहीं दिया? और आहार को नष्ट करने वाले ने क्या नहीं नष्ट किया।

35. पंच सूना कृतं पापं यदेकत्री कृतं गृहे।
तत्सर्वमतिथयेऽसौ दाता दानेन लुम्पति॥40॥103॥

अर्थ- गृहस्थाश्रम में जो पंचसूना सम्बन्धी पाप संचित किया है, उन सबको अतिथि के लिए दान देने वाला मनुष्य लुप्त कर देता है।

36. ददती जनतानन्दं चन्द्रकान्ति रिवामला।
जायते पान दानेन वाणी तापातपोदिनी॥45॥103॥

अर्थ- मुनियों को पानी (जलमात्र आहार) देने से भी जन समूह को आनन्द देने वाली चन्द्रकान्ति के समान निर्मल एवं संताप को दूर करने वाली वाणी प्राप्त होती है।

37. रागद्वेषासंयम मद दुःख भयादिकं न यत् कुरूते।
द्रव्यं तदेव देयं, सुतपः स्वाध्याय वृद्धि करम्॥170॥ *पु.सि.उ.*

अर्थ- जो राग, द्वेष, अंसयम, मद, दुख व भयादिक को नहीं करता हो तथा

समीचीन तप और स्वाध्याय की वृद्धि करने वाला हो वही द्रव्य (आहार दान में) देने योग्य है।

38. सर्वेषा मेव दानानामाहार दान मुत्तमं।
आहार ददता दत्तं मोक्षमार्ग निराकुलम्॥

अर्थ– समस्त दानों में एकमात्र आहारदान ही श्रेष्ठ दान है, जिसने पात्र को आहार दिया है उसने निराकुलता पूर्वक मोक्ष मार्ग को ही प्रदान किया।

39. मोक्षमार्गस्य स्थित्यर्थ माहार दान मुच्यते।
मोक्षमार्गस्य संप्राप्ति स्तं ददता साधिता बुधैः॥

अर्थ– मोक्ष मार्ग की स्थिति के लिए आहारदान कहा है, जिसने आहारदान दिया उसने मोक्ष मार्ग की सिद्धि कर ली।

40. सुक्षेत्रे विधिवत् क्षिप्तं बीजमल्प मपि व्रजेत्।
वृद्धियथा तथा पात्रे दानमाहार पूर्वकं॥

अर्थ– जिस प्रकार अच्छे क्षेत्र में बोया गया अल्प बीज भी महान फलों को प्रदान करता है उसी प्रकार उत्तम पात्र की विधिपूर्वक दिया गया आहारदान उत्तम फलों को देता है।

41. सत्पात्राय प्रदत्तेऽन्ने स्वशक्त्या भक्ति पूर्वकं।
कुदृष्टिः मानवाः केचित् जायंते भोग भूमिजाः॥

अर्थ– स्वशक्ति और भक्तिपूर्वक सत्पात्रों के लिए दिये गये आहारदान से मिथ्यादृष्टि मनुष्य भोगभूमि में भी जाते है।

42. यादृशं पात्र दानेन महत्पुण्यं भवेन्नृणां।
तादृशं च व्रते नैव जीव घातादि दूषिते॥

अर्थ– गृहस्थ पुरुषों को जैसा महान पुण्य पात्र दान से प्राप्त होता है वैसा पुण्य अहिंसादि व्रतों से नहीं प्राप्त होता।

43. वहुनात्र किमुक्तेन विना आहारं सकल वेदिना।
फलं नाहारदानस्य परः शक्नोति भाषितुम्॥31॥ *अ.श्रा.*

अर्थ– यहाँ अधिक कहने से क्या? सकल ज्ञानी (केवली भगवान) के बिना आहार दान के फल को कहने में यहाँ कोई भी समर्थ नहीं है क्योंकि उससे संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तु व मोक्ष सुख भी मिलता है।

44. पडि वुद्धि ऊण चइऊण णिवसिरिं संजमं च घित्तूण।

उप्पाइऊण णाणं केई गच्छंति णिव्वाणं ॥268॥ *वसु. श्रा.*

अर्थ- कितने ही भव्य जीव आहारदान के प्रभाव से राज्य लक्ष्मी को छोड़ कर, संयम को ग्रहण कर, केवल ज्ञान को उत्पन्न कर निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

45. अण्णे उ सुदेवत्तं सुमाणुसत्तं पुणो पुणो लहिऊण।
सत्तट्ठ भवेहि तओ करंति कम्मक्खयं णियमा ॥269॥ *वसु. श्रा.*

अर्थ- कितने ही जीव सुदेवत्व और सुमानुषत्व को पुनः पुनः प्राप्त करके सात आठ भव के पश्चात् नियम से कर्मक्षय करते हैं।

46. इति त्रिविध पात्रेभ्यो दानं प्रीत्या चतुर्विधम्।
यैर्दत्तं भुवने भव्यैस्तैः सिक्तो धर्मपादपः ॥29॥2॥

सु.च. ।आ.विद्यानंदी

अर्थ- इस प्रकार संसार में जिन भव्यों ने प्रीतिपूर्वक तीन प्रकार के पात्रों के लिए चार प्रकार का दान दिया है, उन्होंने धर्म रूपी वृक्ष का सिंचन किया है।

47. इह पर लोय णिरीहो दाणं जो देदि परम भत्तीए।
रयणत्तयेसु ठविदो संघो सयलो हवे तेण ॥365॥

का. अनु. ।स्वामि कार्तिकेय

अर्थ- इह लोक व परलोक के फल की वांछा से रहित हो, परम भक्ति से युक्त हो, जिसने चतुर्विध संघ के लिए आहारादि दान दिया है उसने सकल संघ को रत्नत्रय में स्थापित किया है।

48. उत्तम पत्त विसेसे उत्तमभत्तीए उत्तमं दाणं।
एयदिण्णे वि य दिण्णं इंद सुहं उत्तमं देदि ॥366॥

का. अनु. ।स्वामि कार्तिकेय

अर्थ- जिस दाता ने उत्तम पात्र को उत्तम भक्ति से, उत्तम विधि से, उत्तम आहारादि दान एक दिन भी दिया है तो वह दान उस दाता को उत्तम इन्द्र पद का सुख देने वाला होता है।

49. ऋषीणां भुक्ति शेषस्य भोजने स नरो भवेत्।
तुष्टि पुष्टि बलारोग्य दीर्घायुः श्री समन्वितः ॥

अर्थ- मुनियों के आहारोपरांत बचे शेष भोजन को करने से मनुष्य तुष्टि, पुष्टि, बल, आरोग्य, दीर्घायु व लक्ष्मी के लाभ से समन्वित होता है।

50. दाण ण दिण्ण उ मुणिवरहं, णवि पुज्जइ जिण णाहू।

पंच ण वंदिय परम गुरु किं हो सई शिवलाहू॥ *प.प्र. ।आ. योगीन्दु देव*

अर्थ- जिसने मुनियों को दान नहीं दिया, जिनेन्द्र भगवान की पूजा नहीं की, पंच परमेष्ठी की भक्ति, वंदना या उपासना नहीं की। वह कैसे मोक्ष को प्राप्त करेगा? अर्थात् वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

51. जो पुण लच्छिं संचदि, णय भुंजदि णय देदि सुपत्तेसु।
सो अप्पाणं वंचयदि, मणुयत्तं णिप्फलं तस्स ॥13॥

का. अनु. ।स्वामि कार्तिकेय

अर्थ- जो पुरुष लक्ष्मी का संचय करते हैं, न भोगते हैं, न सुपात्रों को दान देते हैं, वे प्राणी अपनी आत्मा को ठगते हैं उन प्राणियों का मनुष्यभव प्राप्त करना भी निष्फल है।

52. यदि देवाद् गृहे वासो, देवस्यातिथि रूपिणः।
पीयूषस्यापि पानं हि, तं विना नैव शोभते॥9॥21॥

कु. का. ।आ. तिरुवल्लुवर

अर्थ- यदि पुण्ययोग से घर में जब अतिथि हों तब चाहे अमृत ही क्यों न हो, फिर भी उसे अकेले अर्थात् अतिथि को बिना दिये कभी नहीं पीना चाहिए।

53. गृह कर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृह विमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिर मलं धावते वारि॥114॥

र.श्रा. ।आ. समन्तभद्र

अर्थ- जिस प्रकार जल रुधिर को धो देता है, उसी प्रकार गृहत्यागी अतिथियों का प्रतिपूजन अर्थात् नवधा भक्ति पूर्वक दिया गया आहारदान भी निश्चय करके गृहकार्यों से संचित हुए पाप को नष्ट करता है।

54. नाना गृह व्यतिकरार्जित पाप पुञ्जैः, खञ्जी कृतानि गृहिणो न तथा वृतानि।
उच्चैः फलं विदधतीह यथैकदापि, प्रीत्याति शुद्ध मनसा कृत पात्र दानम्॥

1312 ।पं. वि

अर्थ- लोक में अत्यंत विशुद्ध मन वाले गृहस्थ के द्वारा प्रीति पूर्वक पात्र के लिए एक बार भी दिया गया दान जैसे उन्नत फल को करता है, वैसे फल को घर की अनेक झंझटों से (क्रियाओं से, परेशानियों से) उत्पन्न हुए पाप समूहों के द्वारा कुबड़े अर्थात् शक्तिहीन किये गये गृहस्थ के अन्य व्रत नहीं करते हैं।

55. पर निन्दा भयं यस्य, विना दानं न भोजनम्।
कृतिनस्तस्य निर्बीजो, वंशो नैव कदाचन॥5॥4॥

कु. का. ।आ. तिरुवल्लुवर

अर्थ- जो पर निंदा से डरता है और सत्पात्रों को आहार दिये बिना भोजन नहीं

करता है, उस भव्य पुरुष का वंश कभी निर्बीज नहीं होता है।

56. इदं हि धर्म सर्वस्वं शास्त्रृणां वचने द्वयम्।
क्षुधार्तेन समं भुक्तिः प्राणिनां चैव रक्षणम्॥33॥2॥

कु.का. ।आ.तिरुवल्लुवर

अर्थ– आहार चर्या हेतु आये अतिथियों को आहार देना और हिंसा से दूर रहना यह समस्त धर्म के उपदेष्टाओं के दो श्रेष्ठतम वचन हैं।

57. उच्चै र्गोत्रं प्रणते र्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्ते सुन्दरं रूपं स्तवनात्कीर्ति तपोनिधिषु॥115॥ *र.श्रा. ।आ.समन्तभद्र*

अर्थ– तपस्वियों (मुनियों) को नमस्कार करने से उच्च गोत्र, आहारादि दान देने से उत्तम भोग, उपासना करने से पूजा/प्रतिष्ठा, भक्ति करने से सुन्दर रूप और स्तवन करने से विश्व व्यापी कीर्ति प्राप्त होती है।

58. कृत मात्मार्थं मुनये ददाति, भक्तमिति भावितस्त्यागः।
अरति विषाद विमुक्तः शिथिलित लोभो भवत्यहिंसैव॥174॥पु.सि उ.

अर्थ– आत्महित में संलग्न मुनियों को जो भक्तिपूर्वक आहारदान देता है वह सुधी श्रावक अरति, विषाद से मुक्त होता हुआ लोभादि कषाय को शिथिल करने वाला अहिंसक ही होता है।

59. दिण्णई सुपत्त दाणं, विसेसतो होई भोग सग्ग मही।
णिव्वाण सुहं कमसो, णिद्दिटठं जिणवर देहिं॥16॥

र.सा. ।आ.कुन्दकुन्द

अर्थ– सुपात्र को आहारादि दान देने से भोगभूमि तथा स्वर्ग के सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति होती है और अनुक्रम से मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

60. प्रायः कुतो गृहगते परमात्मबोधाः,
शुद्धात्मनो भुवियतः पुरुषार्थ सिद्धिः।
दानात् पुनर्ननु चतुर्विधतः करस्था,
सा लीलयैव कृत पात्र जनानुषंगात्॥15॥2॥ *पं.वि.आ.पद्मनंदी*

अर्थ– जगत में जिस आत्म स्वरूप के ज्ञान से शुद्ध आत्मा के पुरुषार्थ की सिद्धि होती है वह आत्मज्ञान गृह में स्थित मनुष्यों को कहाँ? किन्तु वह पुरुषार्थ की सिद्धि करने वाले पात्र जनों में किये गये चार प्रकार के आहारादि दान से अनायास ही हस्तगत हो जाती है।

61. किं ते गुणाः किमिह तत्सुखमस्ति लोके,
सा किं विभूति रथ या न वशं प्रयाति।
दानं व्रतादि जनतो यदि मानवस्य,
धर्मो जगत्त्रयवशी करणैक मन्त्राः ॥19॥2॥ *पं.वि./आ.पद्मनंदी*

अर्थ- यदि मनुष्य के पास तीनों लोकों को वशीभूत करने के लिए अद्वितीय वशीकरण मंत्र के समान दान एवं व्रतादि से उत्पन्न हुआ धर्म विद्यमान है तो ऐसे कौन से गुण है जो उनके वश में न हो सकें? तथा वह कौन सी विभूति है, जो उसके अधीन न हो? अर्थात् धर्मात्मा मनुष्य के लिए सब प्रकार के गुण, उत्तम सुख और अनुपम विभूति भी स्वयमेव प्राप्त हो जाती है।

62. भोयण दाणे दिण्णे, तिण्णिवि दाणाणि होंति दिण्णाणि।
भुक्ख तिसाए वाही, दिणे दिणे होंति देहिणं ॥363॥

का.अनु. ।आ.कार्तिकेय स्वामी

अर्थ- भोजन (आहार) दान देने से तीनों दान दे दिये जाते हैं, भूख व पिपासा नाम का रोग प्राणियों को प्रतिदिन होता है।

63. सौभाग्य शौर्य सुख रूप विवेकिताद्या, विद्या वपुः र्धन गृहाणि कुलेचजन्म।
संपधतेऽखिलमिदं किल पात्र दानात्, तस्मात् किमत्र सततं क्रियते न यत्नः ॥

44 ॥2॥ पं.वि.

अर्थ- सौभाग्य, शौर्य (शूरवीरता) सुख, सुन्दर रूप, विवेक, बुद्धि, विद्या, उत्तम शरीर, विपुल धन, महल, उत्तम कुल में जन्म होना यह सब निश्चय से पात्र दान के द्वारा ही प्राप्त होता है। फिर हे भव्यजन! तुम इस पात्र दान के विषय में क्यों नहीं यत्न करते हो।

64. क्षितिगत मिव वट बीजं, पात्र गतं दानमल्पमपि काले।
फलतिच्छाया विभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥116॥

र.श्रा. ।आ.समन्तभद्र स्वामी

अर्थ- उत्तम पात्र के हाथ में दिया गया अल्प भी आहार दान समय आने पर संसारी प्राणियों के लिए उत्तम भूमि में बोए वट (बरगद) के बीज की तरह छाया एवं बहुत से इष्ट फलों को देने वाला होता है।

65. खेत्त विसेसे काले, ववियं सुवीयं फलं जहा विउलं।
होइ तहा तं जाणइ, पत्तविसेसु दाणफलं ॥17॥ *र.सा. । ।आ.कुन्दकुन्द*

अर्थ- जो मनुष्य उत्तम खेत में अच्छे बीज को बोता है, तो उसका फल मनोवांछित पूर्ण रूप से प्राप्त होता है, इस प्रकार उत्तम पात्र को दान देने से सर्वोत्कृष्ट सुख की प्राप्ति होती है।

66. मादु पिदु पुत्त मित्तं, कलत्त धण धण्ण वत्थु वाहण विभवं।
संसार सार सोक्खं, सव्वं जाण उ सुपत्त दाण फलं॥19॥ *र.सा.*

अर्थ- माता-पिता, पुत्र, मित्र, स्त्री आदि परिवार का सुख, धन-धान्य वस्त्र, अलंकार, हाथी, रथ, महल तथा महाविभूति आदि का सुख एकमात्र सुपात्र दान का फल है।

67. सप्तंग रज्ज णव णिहि, भंडार सडंग वल चउदह रयणं।
छण्णवदि सहस्सिच्छ, विहउ जाणउ सुपत्त दाण फलं॥20॥ *र.सा.*

अर्थ- सप्त अंग सहित राज्य, नौ निधि, चौदह रत्न, सात प्रकार की सेना, छह खण्ड का राज्य, छियानवे हजार रानियाँ, चक्रवर्ती का अपरिमित वैभव सुपात्र दान के फल से ही प्राप्त होता है।

68. सुकुल सुरूप सुलक्खण सुमइ सुसिक्खा सुसील सुगुण चारित्तं।
सुहलेसं सुह णामं सुह सादं सुपत्त दाण फलं॥21॥ *र.सा.*

अर्थ- उत्तम कुल, सुन्दर स्वरूप, शुभ लक्षण, श्रेष्ठ बुद्धि, उत्तम निर्दोष शिक्षा, उत्तमशील, उत्कृष्ट गुण, श्रेष्ठ चारित्र, शुभ लेश्या, शुभ नाम, समस्त प्रकार के भोगोपभोग की सामग्री आदि सर्व सुख के साधन सुपात्र दान के फल से प्राप्त होते हैं।

69. भोयण वलेण साहू, सत्थं सेवेदि रत्ति दिवसं पि।
भोयण दाणे दिण्णे, पाणाविय रक्खिया होंति॥364॥ *का.अनु.*

अर्थ- भोजन (आहार) के बल से साधु शास्त्र का दिन रात स्वाध्याय करता है, भोजन (आहार) दान देने पर ही साधक के प्राणों की रक्षा संभव होती है।

70. सर्वो वाञ्छति सौख्यमेव तनुभृत्त, तन्मोक्ष एव स्फुटम्।
दृष्ट्यादि त्रय एव सिद्धयति तन्निर्ग्रन्थ एव स्थितम्॥
तद्वृत्ति र्वपुषोऽस्य वृत्ति रशनात् तद्दीयते श्रावकैः।
काले क्लिष्ट तरेऽपि मोक्ष पदवी प्रायस्ततो वर्तते॥8॥7॥

पं.वि.आ.पद्मनन्दी

अर्थ- सब प्राणी सुख की ही वांछा करते हैं, वह सुख स्पष्टतया मोक्ष में ही है, वह मोक्ष सम्यग्दर्शनादि स्वरूप रत्नत्रय के होने पर ही सिद्ध होता है, वह रत्नत्रय साधु के होता है, उक्त साधु की स्थिति शरीर के निमित्त से होती है, उस शरीर की स्थिति भोजन

के निमित्त से होती है और वह भोजन श्रावकों के द्वारा दिया जाता है, इस प्रकार इस अतिशय क्लेश युक्त काल में भी मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति प्रायः उन श्रावकों से ही हो रही है।

71. वज्रजंघो नृपोदत्वा चारणाभ्यां सुभावतः।
अन्न दानं क्रमादासीदादि नाथोऽपि यो जिनः॥

अर्थ-राजा वज्रजंघ युगल चारण मुनियों को भाव सहित आहार दान देने से क्रम से जिनेन्द्र भगवान आदिनाथ तीर्थंकर हुए।

72. क्रमात् श्री शंतिनाथोऽयं जातस्तीर्थंकरा ह्वयाः।
पात्र दान सुपुण्येन कामदेवश्च चक्रभृत॥

अर्थ- पात्र दान के सुपुण्य से क्रमशः (राजा श्रीषेण) कामदेव, चक्रवर्ती पद के साथ तीर्थंकर पद के धारक शांतिनाथ जिनेन्द्र हुए।

73. किं जीवितेन कृपणस्य धनेन लोके, पूजादिदान रहितस्य च वर्द्धकस्य।
पापस्य तस्य पुरतो बहु रोग शोक, क्लेशादि दुखसहिता कुगति र्ध्रुवंस्यात्॥

182 ॥सु.रत्ना.

अर्थ- जो पूजादि दान से रहित होता हुआ, मात्र धन की वृद्धि में लगा हुआ है, ऐसे कृपण मनुष्य के जीवन व धन से लोक में क्या प्रयोजन है? आगे चलकर उस पापी मनुष्य की बहुत रोग, शोक, संक्लेशादि दुःखों से सहित कुगति नियम से होने वाली है।

74. वरं दरिद्रं न च दान हीनं, धनं महामोह करं दुरन्तम्।
पापस्य बीजं नरकस्य हेतु, र्दुःखाकरं दुगर्ति दान दक्षम॥

183 ॥ सु. रत्ना.

अर्थ- दरिद्री रहना अच्छा है किन्तु दानहीन होकर जीना अच्छा नहीं है, क्योंकि धन महामोह का कारण, दुष्परिणाम युक्त, पाप का बीज है, नरक का हेतु, दुखों की खान एवं दुर्गति देने में समर्थ है।

75. भजंति पात्र दानेन इन्द्र चक्र धरादि जात।
दक्षा भोगाश्च लोकेस्मिन् तीर्थराज निषेवितान॥

अर्थ- सत्पात्रों को आहारादि दान देने से भव्य जीवों को इन्द्र, चक्रवर्ती, तीर्थंकर आदि के भोग्य योग्य उत्तम भोग प्राप्त होते हैं।

76. वारैक दान योगेन दृष्टि हीना नरा गता।
देवालयं सुभुक्त्वाऽपि भोगभूम्यादिजं सुखं॥

अर्थ- जिस भव्य जीव ने एक बार भी आहार दान दिया, ऐसा वह मिथ्यादृष्टि मनुष्य भी भोग भूमि के सुखों को भोग स्वर्ग में गया।

77. पात्रदानानुमोदेन तिर्यंचोऽपि दिवं गताः।
भोगभूमौ सुखं भुक्त्वा परमाह्लाद कारणं॥ *स.श्रा.*

अर्थ- सत्पात्रों के आहारदान की अनुमोदना करने मात्र से ही तिर्यंच (पशु-पक्षी) जीव भी भोग भूमि के उत्तम सुख को भोगकर परम आह्लाद (मोक्ष सुख) को प्राप्त हुए।

78. स्तोकं दानं सुपात्राय, दत्तं भूरि गुणं भवेत्।
वट बीजं यथा क्षेत्रे, तस्माद् देयं विवेकिभिः॥159॥ *सु.रत्ना.*

अर्थ- जैसे उत्तम क्षेत्र में बोये हुए वट के बीज के समान उत्तम पात्र के लिए दिया थोड़ा सा दान भी बहुत गुणरूप होता है इसलिए विवेकी जनों के द्वारा सत्पात्रों को दान देना चाहिए।

79. दृष्टि हीनोऽपि वारैकं, पात्रदानं करोति यः।
भोग भूमौसमुत्पद्य सोऽपि याति सुरालयम्॥160॥ *सु.रत्ना.*

अर्थ- जो मनुष्य सम्यग्दर्शन से रहित होने पर भी एक बार सत्पात्रों को आहारादि दान देता है वह भी भोगभूमि में उत्पन्न होकर स्वर्ग को जाता है।

80. पात्र दानेन सद्दृष्टिः स्वर्गं गत्वाऽपि तत्सुखम्।
चिरं भुक्त्वा सुराज्यं च पश्चाद् गच्छंति निवृतिम्॥161॥ *सु.रत्ना.*

अर्थ- सम्यग्दृष्टि मनुष्य पात्रदान के द्वारा स्वर्ग को जाकर चिरकाल तक वहाँ के सुखों को भोग कर भी उत्तम राज्य को प्राप्त होता है, पश्चात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

81. भोग भूमौ समुत्पन्ना तिर्यंचोऽपि जिनैर्मताः।
पात्रदानानुमोदेन तस्मात् देयं सुभावतः॥162॥ *सु.रत्ना.*

अर्थ- पात्र दान की अनुमोदना से तिर्यंच भी भोगभूमि में उत्पन्न हुए हैं, इसलिए अच्छे भावों से सदैव पात्रों को आहारादि दान देना चाहिए, ऐसा जिनेन्द्र भगवान के मत में कहा गया है।

82. अतुल गुण निधानं स्वर्ग मोक्षैक द्वारं,
सकल सुख समुद्रं पाप वृक्षानलं वै।
स्वपर गुण निदानं सर्वसाधूपकारं,
कुरू मुनिजन दानं त्वं सदा मुक्ति हेतुम्॥163॥ *सु.रत्ना.*

अर्थ- जो अनुपम गुणों का भण्डार है, स्वर्ग व मोक्ष का एक द्वार है, समस्त गुणों का सागर है, पाप रूपी वृक्ष को जलाने के लिए अग्नि है, स्व-पर गुणों का कारण है, सर्व साधुओं का उपकार करने वाला है, मुक्ति का हेतु, ऐसा पात्र दान तुम सदा करो।

83. जह रयणाणं वइरं सेलेसु य उत्तमो जहा मेरू।
तह दाणाणं पवरो आहारो होइ णायव्वो॥526॥ *भा.सं. ।देवसेनाचार्य*

अर्थ- जिस प्रकार सब रत्नों में श्रेष्ठ वज्र (हीरा है) पर्वतों में श्रेष्ठ सुमेरू पर्वत है उसी प्रकार सभी दानों में श्रेष्ठ आहारदान जानना चाहिए।

84. जेहिण दिण्णं दाणं ण चावि पुज्जा किया जिणिंदस्स।
ते हीण दीण दुग्गय भिक्खं ण लहंति जायंता॥569॥ *भा.सं.*

अर्थ- जो पुरुष कभी न तो जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते हैं न सुपात्रों को दान देते हैं वे अत्यन्त दीन दुर्गति को पात्र हो जाते हैं, माँगने पर भी उन्हें भीख नहीं मिलती।

85. मुणि भोयणेण दव्वं जस्स गयं जुव्वणं य तवयरणे।
सण्णासेण य जीवं जस्स गयं कि गयं तस्स॥567॥ *भा.सं.*

अर्थ- मुनियों को आहार दान देने में द्रव्य, तपश्चरण करने में यौवन संन्यास में प्राण जिसके चले जाते हैं उनका क्या गया? कुछ भी नहीं गया, बल्कि वे सार्थक हो गये।

86. किविणेण संचय धाणं ण होइ उवयारियं जहा तस्स।
महुयरि इव संचिय महु, हरंति अण्णे सपाणेहिं॥559॥ *भा.सं.*

अर्थ- कंजूस का संचित धन, धर्मप्रभावना, परोपकार व पात्र दान के लिए नहीं होता जैसे मधु मक्खियाँ द्वारा संचित मधु ही उनकी मृत्यु का कारण होता है तथा उसका भोग भी अन्य ही करते हैं।

87. दानादाने हि न श्रेयः, स्वर्गोऽपि प्राप्यते यदि।
दानञ्च परमोधर्मः स्वर्ग द्वारेऽपि मुद्रिते॥2॥23॥ *कु.का.*

अर्थ- श्रावक के लिए दान लेना ही बुरा है चाहे दान में स्वर्ग ही क्यों न मिले और दान देना परम धर्म है, उसे देने से भले स्वर्ग के द्वार बंद हो जाएं, फिर भी दान देना चाहिए।

88. विजयेषु समस्तेषु, श्रेष्ठः स्वात्मजयो मतः।
ततोऽपि विजयः श्रेष्ठः, परेषां क्षुत्प्रशामनम्॥5॥23॥ *कु.का.*

अर्थ- समस्त विजयों में श्रेष्ठ विजय अपनी आत्मा को जीतना मानी गई है किन्तु उससे भी श्रेष्ठ विजय है आहारार्थ मुनियों को दान देना उनकी क्षुधा को शांत करना।

89. इतरानापि संभोज्य, यो भुंक्ते दययान्वितः।
नैव स्पृशति तं जातु, क्षुधा रोगो भयंकरः॥7॥23॥ *आ. तिरुवल्लुवर*

अर्थ- जो मनुष्य अपनी रोटी दूसरों के साथ बाँट कर खाता है, उसे भूख की बीमारी कभी स्पर्श नहीं करती।

90. एकाकी कृपणो भुंक्ते, यदन्नम प्रीति संयुतः।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्य, भिक्षान्नात् तद् घ्रणास्पादम्॥9॥23॥ *कु.का.*

अर्थ- भिक्षान्न से भी बढ़कर अप्रिय व ग्लानि युक्त कंजूस का भोजन है जो कि अकेला बैठकर ही उसे ग्रहण करता है।

91. मृत्युरेव ही तद्वस्तु यत्सर्वाधिकमप्रियम्।
दान शक्तेरसद्भावे, चित्रमेषोऽपि रोचते॥10॥23॥ *कु.का.*

अर्थ- मृत्यु से बढ़कर कोई बात कड़वी नहीं, किन्तु उस समय मृत्यु भी अच्छी लगती है, जब दान देने की शक्ति नहीं होती।

92. ता देहो ता पाणा, ता रूपं ताम् णाण विण्णाणं ।
जामाहारो पविसइ, देहे जीवाणं सुक्खयरो॥520॥ *भा.सं.*

अर्थ- यह जीव जब तक आहार ग्रहण करता है तब तक ही देह है, प्राण हैं, रूप है, ज्ञान और विज्ञान है, जीवों के आहार सुखकर है, बिना आहार के सब नष्ट हो जाता है।

93. आहार सणे देहो, देहेण तवो तवेण रय सडणं।
रय णासेण य णाणं, णाणे मुक्खो जिणो भणई॥521॥ *भा.सं.*

अर्थ- आहार से शरीर, शरीर से तप से ज्ञानावरण, दर्शनावरणादि कर्मों का क्षय, रज कर्मों के क्षय से केवल ज्ञान की प्राप्ति, इनकी प्राप्ति होने से मोक्ष की प्राप्ति जिनेन्द्र भगवान ने कही है।

94. चउविह दाणं उत्तं जे तं सयल मवि होइ इह दिण्णं।
सविसेसं दिण्णेणय, इक्केणाहार दाणेण॥522॥ *भा.सं. ।आ.देवसेन*

अर्थ- जो पुरुष विशेष रीति से एक आहार दान ही देता है, वह सकल दान देने वाला होता है, उसके द्वारा चारों ही दान दिये कहे जाते हैं।

95. आयाराई सत्थं आहार वलेण पढइ णिस्सेसं।
तम्हा तं सुयदाणं दिण्णं आहार दाणेण॥524॥ *भा.सं. । ।आ.देवसेन*

अर्थ- आहार के बल से ही आचारांग आदि समस्त शास्त्रों को पढ़ता है अतः आहार दान से शास्त्र दान भी हो जाता है।

96. दाणस्साहारं फलं को सक्कई वण्णिऊण भुवणयले।
दिण्णेण जेण भोओ, लब्भंति मणिच्छियासव्वे ॥493 ॥ *भा.सं. आ.देवसेन*

अर्थ- तीनों लोकों में आहारदान के फल का वर्णन करने में कौन समर्थ है, जिसके द्वारा सभी इच्छित भोग प्राप्त होते हैं।

97. मिच्छादिट्ठी पुरिसो, दाणं जो देइ उत्तमे पत्ते।
सो पावइ वर भोए, पुण उत्तम भोय भूमिसु ॥499 ॥ *भा.सं.आ.देवसेन*

अर्थ- यदि कोई मिथ्यादृष्टि पुरुष किसी उत्तम पात्र को दान देता है, तो वह उत्तम भोग भूमि के उत्तम भोगों को प्राप्त होता है।

98. उत्तम छित्ते वीयं, फलइ जहा लक्ख कोडि गुणेहिं।
दाणं उत्तम पत्ते, फलइ जहा किमिच्छ भविएण ॥501 ॥ *भा.सं.*

अर्थ- जिस प्रकार उत्तम पृथ्वी पर बोया बीज लाख करोड़ गुना फलता है उसी प्रकार उत्तम पात्र को दिया हुआ दान इच्छानुसार फल को देता है।

99. समादिट्ठी पुरिसो, उत्तम पुरिसस्स दिण्ण दाणेण।
उववज्जइ दिव लोए, हवइ स महद्दिडओ देओ ॥502 ॥ *भा.सं.*

अर्थ- यदि कोई सम्यग्दृष्टि पुरुष उत्तम पात्र को दान देता है तो वह महान ऋद्धि के धारक देवों में उत्पन्न होता है।

100. कुच्छिगयं जस्सणं, जीरइ तप झाण वांभचरिएहिं।
सो पत्तो णित्थारइ, अप्पाणं चेव दायारं ॥511 ॥ *भा.सं.*

अर्थ- जो अन्न पेट में पहुँचकर तपश्चरण, ध्यान, ब्रह्मचर्य के द्वारा पच जाए, वही अन्नदान पात्र एवं दाता को संसार से पार कर देता है।

101. जो पुण हंतई धाण, कणइ मुणिहिं कुभोयण देइ।
जम्मि जम्मि दालिद्द, दहण पुट्ठिं ण तहा छंडहि ॥516 ॥ *भा.सं.*

अर्थ- जो पुरुष अन्न, धन आदि के होते हुए भी मुनियों को कुभोजन देता है, उसकी पीठ को दरिद्रता अनेक जन्मों तक भी नहीं छोड़ती।

102. देहो पाणा रूपं विज्जा धम्मं तवो सुहं मोक्खो।
सव्वं दिण्णं णियमा हवइ आहार-दाणेण ॥517 ॥ *भा.सं.*

अर्थ- मुनियों को आहार दान देने से देह, प्राण, रूप, विद्या, धर्म, तप, सुख, मोक्ष

ये सब नियम से दिये जाते हैं।

103. भुक्खं समा णहु वाही अण्ण समाणं य ओसहं णत्थि।
तम्हा आहार दाणे आरोगत्तं हवे दिण्णं ॥518॥ *भा.सं.*

अर्थ- भूख के समान व्याधि नहीं है, अन्न के समान कोई औषधि नहीं है, इसलिए आहार दान देने से आरोग्यता का दान भी होता है।

104. बहु कष्ट समाकीर्णं, गृहभारं मनीषिणः।
वहन्ति केवलं वीक्ष्य, पुण्यमातिथ्य पूजनं ॥1॥9॥ *कु.का.आ.तिरुवल्लुवर*

अर्थ- विद्वान लोग बहु कष्टों को सहन कर गृहभार को ढोते हैं तो मात्र अतिथि पूजन पुण्य लेने के लिए ही ढोते हैं।

105. गृहगतातिथे र्भक्तेर्यो, हि नैव प्रमाद्यति।
तस्योपरि न चायाति, विपत्तिः कापि कष्टदाः ॥3॥9॥ *कु.का.*

अर्थ- जो घर में अतिथि का आदर सत्कार करने से नहीं चूकता उस पर विपत्ति, कष्ट कभी भी नहीं आते।

106. योग्यातिथेः सदायस्य, स्वागते मानसी स्थितिः।
श्रियोऽपि जायते मोदो, वासार्थं तस्य सद्मनि ॥4॥9॥ *कु.का.*

अर्थ- जो मनुष्य योग्य अतिथि का प्रसन्नतापूर्वक सम्मान करता है, (आहारादि देता है) उसके घर में निवास करने वाली लक्ष्मी परमानंद को प्राप्त होती है।

107. शेषमन्नं स्वयं भुक्ते, पूर्वं भोजयतेऽतिथीन्।
क्षेत्राण्यकृष्ट पच्यानि नूनं तस्य महात्मनः ॥5॥9॥ *कु.का.*

अर्थ- जो अतिथि को आहार देकर शेष बचे भोजन को स्वयं खाता है, उस महात्मा श्रावक को निश्चय से खेत की क्या आवश्यकता होगी? अर्थात् नहीं।

108. आघ्रातं म्लानता याति, शिरीष कुसुम परम्।
एकेन दृष्टि पातेन, म्रियतेऽतिभिमानसम् ॥10॥9॥ *कु.का.*

अर्थ- पारिजात पुष्प तो सुंघने से मुरझा जाता है, किन्तु अतिथि का मन तोड़ने के लिए एक दृष्टि ही पर्याप्त है।

109. योग्य वैभव सद्भावे, येनाहो नेज्यतेऽतिथिः।
दरिद्र स नरो नूनं, मूर्खाणाञ्च शिरोमणिः ॥9॥9॥ *कु.का.*

अर्थ- जो पर्याप्त वैभवशाली होते हुए भी अतिथि का सत्कार नहीं करता, वह नितान्त दरिद्र और मूर्खों का शिरोमणि है।

110. पूर्वं सम्पूज्य गच्छन्तमागच्छतं प्रतीक्षते।
यः पुमान् स स्वयं नूनं, देवानां सुप्रियोऋृतिथिः ॥6 ॥9 ॥ *कु.का.*

अर्थ- जो पूर्व में आगत अतिथि की सेवा कर चुका है, भविष्य में आने वाले की प्रतीक्षा करता है ऐसा व्यक्ति निश्चय से देवों का सुप्रिय अतिथि होता है।

111. आतिथ्य पूर्ण माहात्म्य, वर्णने न क्षमा वयम्।
दातृ पात्र विधि द्रव्यैस्तस्मिन्नस्ति विशेषता ॥7 ॥9 ॥ *कु.का.*

अर्थ- हम किसी अतिथि की सेवा, आतिथ्य का वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं। उसमें दाता, पात्र, विधि, द्रव्य की विशेषता से विशेषता होती है।

112. अकर्ताऽतिथियज्ञस्य, शोकमेवं गमिष्यति।
सञ्चितोऽयं महाकोषः पञ्चत्वे हा न कार्यकृत् ॥8 ॥9 ॥ *कु.का.*

अर्थ- अतिथि की पूजा न करने वाला व्यक्ति मृत्यु के समय में पछताएगा कि हाय! मैंने इतना धन संचय किया किन्तु वह कुछ काम नहीं आया।

113. भुक्ति मात्र प्रदाने हि, का परीक्षा तपस्विनाम्।
ते सन्तः सन्त्वसन्तो वा, गृही दानेन शोभते ॥361 ॥8 ॥ *यश.ति.च.*

अर्थ- केवल आहार देने मात्र के लिए साधुओं की परीक्षा नहीं करना चाहिए, चाहे वे मुनि सच्चे हों या झूठे। गृहस्थ तो दान से ही सुशोभित होता है।

114. सर्वारम्भ प्रवृतानां गृहस्थानां धन व्ययः।
बहुधास्ति ततोऽत्यर्थं क कर्त्तव्यां विचारणा ॥362 ॥ *य.ति.च.*

अर्थ- समस्त प्रकार के आरंभ कृषि, व्यापार, उद्योग आदि में प्रवृत्त गृहस्थों का ध न अनेक प्रकार से (लज्जा, भय, कषाय, पोषण, विषयों की प्रवृत्ति में) व्यय होता है अतः तपस्वियों को आहार देने में विशेष परीक्षा नहीं करनी चाहिए।

115. यथा यथा विशिष्यन्ते, तपो ज्ञानादिभिर्गुणैः।
तथा तथादिकं पूज्या, मुनयो गृह मेधभिः॥363॥ *य.ति.च.*

अर्थ- तपस्वी साधु जैसे-जैसे तप ज्ञानादि गुणों से विशेष हों, वैसे-वैसे गृहस्थों को उनकी विशेष पूजा करनी चाहिए।

116. दैवाल्लब्धं धनं, धन्यैर्वप्तव्यं समाश्रिते।
एको मुनिर्भवेल्लभ्यो, न लभ्यो वा यथागमम्॥364॥ *य.ति.च.*

अर्थ- भाग्यशाली पुरुषों को भाग्य से प्राप्त हुए धन को जैन धर्मानुयायियों में अवश्य ही खर्च करना चाहिए, भले ही उन्हें आगमानुसार मुनि मिलें अथवा न भी मिलें।

117. उच्चावध जन प्रायः, समयोऽयं जिनेशिनाम्।
नैकस्मिन् पुरुषे तिष्ठेदेकस्तम्भः इवालयः॥365॥ *य.ति.च.*

अर्थ- जिनेन्द्र भगवान का यह उत्तम धर्म, उत्तम व जघन्य सभी प्रकार के मनुष्यों से भरा हुआ है। जैसे गृह एक खम्भे पर नहीं ठहर सकता, वैसे यह धर्म भी एक पुरुष के आश्रय से नहीं ठहर सकता है।

118. दुक्खेण लहइ वित्तं, वित्ते लद्धे वि दुल्लहं चित्तं।
लद्धे चित्ते वित्ते, सुदुल्लहो पत्त लंभो वा॥561॥ *भा.सं. /आ.देवसेन*

अर्थ- धन प्राप्ति दुर्लभ है, यदि धन प्राप्त हो जाए तो चित्त में दान देने की उत्सुकता दुर्लभ है, कदाचित् चित्त में दान की उत्सुकता भी हो तो पात्र लाभ होना अति कठिन है।

119. ते धण्णा लोयत्ते तेहिं णिरूद्धाइं कुगइ गमणाणि।
वित्तं पत्तं चित्तं पाविवि जहि दिण्ण दाणाइं॥566॥ *भा.सं. /आ.देवसेन*

अर्थ- कुगति के गमन को रोकने में समर्थ वे पुरुष ही लोक में धन्य हैं, जिन्होंने यथेष्ट धन, उत्तम पात्र, दान में उत्सुक चित्त को प्राप्त कर सुगति गमन हेतु दान दिया है।

120. जह जह वड्ढइ लच्छी तह तह दाणाइं देह पत्तेसु।
अहवा हीयइ जह जह देहि विसेसेण तह तह यं॥568॥ *भा.सं. /आ.देवसेन*

अर्थ- जैसे-जैसे धन की वृद्धि हो, वैसे-वैसे सत्पात्रों के लिए दिये जाने वाले दान में भी वृद्धि करते जाना चाहिए अथवा जैसे-जैसे धन की हानि हो वैसे-वैसे विशेष दान देना चाहिए, जिससे वह धन धर्म कार्य में लगकर सार्थक हो जाए, अन्यथा उसे नष्ट होना ही है अतः दान देने से धन सुरक्षित हो जाता है।

121. जानो गृद्ध समान, ताके सुत दारादिका।
जो नहीं करे सुदान, ताके धन आमिष समा॥1986॥ *क्रि.को.*

अर्थ- जो सत्पात्रों को आहारादि दान नहीं करता है, उसका धन माँस के समान है और उसे खाने वाले उसके पुत्र, स्त्री आदिक गिद्ध मण्डली के समान हैं।

❂❂❂

तप करते यौवन गयो, द्रव्य गयो मुनि दान।
प्राण गये संन्यास में, तीनों गये न जान॥

विजयों में बस आत्मजय, सबसे अधिक महान।
क्षुधा शमन हो अन्य का, उससे भी जयवान॥5॥ *कु.का.*

सांई इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए॥ *कबीर*

जो करता है बाँटकर, भोजन का उपभोग,
कभी न व्यापै भूख का, उसे भयंकर रोग॥ *कु.का.*

भूखे अतिथि छोड़कर भोजन करते आप।
फिर भी निज को समझते, साधर्मी निष्पाप॥ *आ.विद्यासागर*

धन दौलत का रूखड़ा, दो फल का दातार।
दान दिये से शिव मिले, संचित नरकहिं द्वार॥

या धन की गति तीन हैं, दान, भोग अरु नाश।
दान भोग यदि ना करे, निश्चित होय विनाश॥

लक्ष्मी के सुत चार हैं, धर्म, अग्नि, नृप, चोर।
जहाँ जेठे की कदर नहीं, तीनों लेत बटोर॥

भिक्षा भोजन से बुरा, वह है अधिक जघन्य।

❂❂❂

एकाकी जिस अन्न को, खाता कृपण अधन्य।।

दान देय मन हरष विशेखै। इस भव जस पर भव सुख देखै॥

कवि. द्यानतराय

दान चार परकार चार संघ को दीजिए।
धन बिजली उनहार नरभव लाहो लीजिए॥ *कवि. द्यानतराय*

कृपण द्रव्य को जोड़कर, करे नाश का योग।
चाखा उसने ही नहीं, मधुर दान का भोग॥ *कु.का.*

एक पाव आटे में मोक्ष मार्ग मिलता है, जो चाहो सो ले लो॥

आ. विमल सागर

दान दिये से फिर मिले, दिया करो सब कोय।
घर में धरा न पाईये, जो कर दिया न होय॥

ऋतु बसंत याचक भये, दिये तरू मिल पात।
यातैं नव पल्लव भये, दिया दूर नहीं जात॥

दान बिना पछताएगा, लोभी आठों याम।
मृत्यु समय यह सम्पदा, हाय! न आवे काम॥

आहार दान उत्तम है जग में, सबको सुखदाई।
जा सेवा को सुरपति तरसैं, ता सेवा हम पाई॥

अतिथि यज्ञ की साधना, करने को ही कार्य।
गृह जन करते कष्ट से, धन संचय का कार्य॥

दोनों संभारै कूप जल सम, द्रव्य घर में परिनया।
निज हाथ दीजै साथ लीजै, खाय खोया बह गया॥

धनिसाध शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नाहीं बोध को॥

जिन घर संत न पग धरैं, नहिं साधर्मी सम्मान।
नहिं हो आहार सुपात्र के, जानों वे श्मशान॥

जिहि घर साधु न पूजिये, प्रभु की सेवा नाहिं।
ते घर मरघट सारिखे, भूत बसैं तिन माहिं॥

जिस घर पुजते जिन प्रभु, हों निर्ग्रन्थ आहार।
बास रहे सुख शांति का, हो नित मंगलाचार॥

योग्य अतिथि का प्रेम से, स्वागत का यदि नाद।
तो लक्ष्मी के वास का, उसके घर आल्हाद॥

अतिथि भक्ति करता नहीं, होकर वैभव नाथ।
पूर्ण दरिद्री सत्य वह, मूर्ख शिरोमणि साथ॥

त्यागी व्रतियों के ग्रहण करने योग्य कुछ औषधियाँ

—संकलन क्षु. विशंक सागर

खांसी

1. पीपर छोटी 1 भाग + 2 भाग बहेड़ा = बूरे की चाशनी में चाटने से।
2. थोड़ी पिसी हुई हल्दी + थोड़ा बूरा + कटोरी में जल डालकर गर्म कर लें व गर्म पी लें।
3. सौंठ + पीपल + काली मिर्च तीनों का सम भाग चूर्ण से भी लाभ होता है।
4. 10 ग्राम भुनी फिटकरी +100 ग्राम बूरा =14 फड़ियाँ बना लें। सूखी खांसी हो तो 125 ग्राम दूध के साथ लें। गीली खांसी में 125 ग्राम पानी से लें।

मधुमेह

1. 6 बेल पत्र (6 × 3) + नीम के पत्ते 6 + 6 तुलसी के पत्ते + बोगन बेलियो के पत्ते हरे 6 + 3 काली मिर्च साबुत, नित्य सेवन करें। कितनी बड़ी शुगर हो, सामान्य हो जाती है पुनः शक्कर भी खा सकते हैं जामुन के पत्ते या गुठली का ही चूर्ण लाभदायक।
2. जामुन की गुठली + करेला का बीज + आँवला + बीज पत्र = चारों सम भाग कूटकर चूर्ण नित्य सेवन करने से लाभ।
3. मैथी पिसी या मैथी का पानी भी लाभदायक होता है।

पेट में अम्लता (एसिडिटी)

1. 1 लौंग व 1 इलायची दिन में जितनी बार भोजन।
2. नाश्ता करें खायें काली मिर्च + सेंधा नमक का चूर्ण के सेवन से भी लाभ।
3. सौंठ + जवाखार के चूर्ण की फांकी से भी लाभ।
4. जीरा + धनिया समभाग 3-3 माशा चूर्ण बूरे के साथ सेवन करने से लाभ।
5. हरा आँवला+अंगूर+अनार के दाने व मशाला आदि मिलाकर चटनी बनाकर खाने से भी लाभ।

गैस

1. मुनक्का के बीज 30 ग्राम + 6 ग्राम सौंठ + 6 ग्राम सौंफ बड़ी + 3 ग्राम काली मिर्च + 3 ग्राम सेंधा नमक = चटनी बना लें 1 चम्मच प्रत्येक भोजन के साथ लें।
2. 125 ग्राम दही/मट्ठे में + 2 ग्राम अजवायन + 1/2 ग्राम नमक।
   इस तरह दो सप्ताह सेवन करें।
3. हींग का सेवन दाल सब्जी के साथ करने से गैस में आराम मिलता है।
4. गैस बढ़ने पर आधी कटोरी पानी में नमक + काली मिर्च 4 नग + लौंग 4 नग उबाल कर पीने से तुरंत लाभ मिलता है।
5. सौंठ + हींग + सेंधा नमक के चूर्ण की फांकी भी लाभदायक है।
6. लौंग + हरड़ + सेंधा नमक का क्वाथ बना कर पीने से पेट साफ होता है व गैस में आराम मिलता है।

गुर्दे की पथरी

1. ताजी हरी मेंहदी की पत्तियाँ 12 ग्राम 4 कप पानी में उबालें पानी एक कप रह जाए तब सेंधा नमक मिलाकर छान कर पी लें। 7 दिन में नियम से पूर्ण लाभ होगा।
2. जवाखार 7 ग्राम + कलमी शोरा 7 ग्राम + 7 ग्राम सुहागा = बारीक पीसकर 21 फड़िया 1-1 ग्राम की। कुल्थी के काढ़े से नित्य सेवन।
3. 6 ग्राम कुल्थी 1 ग्लास पानी में उबालें 1 कप रह जाये तब पीऐं, लाभ होगा।

पीलिया

1. बिन्दाल के डोड़े (पंसारी के यहाँ मिलते है) 4-5 नग रात को मिट्टी के सकोरे में पौन कप पानी में भिगो दें। प्रातः मसलकर छान लें। उसका अर्क 2-3 बूंदें दोनों नथुने में डालें। दो दिन बाद सारा पीलिया झर जायेगा।
2. गुलाबी फिटकरी फूली हुई 2-4 रत्ती तक नित्य सेवन करें।
3. मूली के पत्तों का रस 50 ग्राम + 10 ग्राम दूध, बूरा मिला नित्य सेवन करें।
4. मूली के पत्तों का रस 50 ग्राम, 10 ग्राम बूरा नित्य सेवन करने से भी पीलिया में लाभ होता है।

आँखों का दु:खना

1. 2 रत्ती फिटकरी की बारीक खलि 30 ग्राम गुलाब जल में घोलकर, ड्रॉपर से आँखों में डालने पर आँखों सम्बन्धी 80: रोग दूर होते हैं एवं घी/बूरा/काली मिर्च का सेवन करें।
2. त्रिफला को भिगोकर उसके पानी से नित्य आँखें धोयें, हरे शाक, फल, दूध आदि पदार्थों का अधिक सेवन करें, अनार के पत्ते पीसकर टिकिया बनाकर बाँधने से भी नेत्रपीड़ा दूर होती है।
3. वश्ल के कोमल पत्ते घी में तलकर बाँधने से अधिक पुराने दर्द में भी कुछ दिनों में ही लाभ हो जाता है।

दाँतो के लिए

1. 2 ग्राम सेंधा नमक अत्यन्त बारीक + 8 ग्राम सरसों का तेल, इससे कुल्ला करें। दांतों के समस्त रोगों में यह राम-बाण औषधि है।
2. फिटकरी का मंजन एवं बड़ी इलायची के पानी से कुल्ला करने से लाभ।

3. नीम की लकड़ी की राख + कपूर + इलायची + काली मिर्च + काला नमक + माजू फल + दाल चीनी + हरड़ का चूर्ण + तोमर के बीज + फिटकरी की भस्म = सबका चूर्ण बनाकर नित्य गर्म पानी से कुल्ला करने पर लाभ।
4. पीपल+मोचरस+जीरा+हरड़+सेंधा नमक का मंजन बना कर नित्य गर्म पानी से कुल्ला करें।

मुँह की दुर्गन्ध

1. भोजन के बाद 1 लौंग नित्य चूसें।
2. भोजन के बाद आधा चम्मच सौंफ लें।
3. कोमल नीम की ताजी पत्ती + काला नमक + काली मिर्च का सेवन करने से पायरिया में लाभ व दुर्गन्ध मिटती है।
4. खश्खज अथवा खजखज, इलायची, लौंग का तेल लगाने से दाँत के रोगों में लाभ व मुँह से आने वाली दुर्गन्ध मिटती है।

मुँह के छाले

1. छोटी हरड़ बारीक पीसकर लगाने से लाभ होता है।
2. टमाटर ज्यादा सेवन करें या मुलेठी मुँह में रखने से भी लाभ।
3. चमेली के पत्ते या गुंदी की छाल मुँह में रखने से भी लाभ।
4. जामुन के पत्ते चबाने से या उनके पानी से कुल्ला करने से भी लाभ किन्तु पेट में कब्ज नहीं होना चाहिए।

गले की खरांश/उपजीव/टॉनसिल्स

1. 250 ग्राम दूध + 2 ग्राम हल्दी + चौथाई चम्मच सौंठ का चूर्ण उबालें। गर्म-गर्म पीयें।
2. हल्दी (थोड़ी कुटी) + सेंधा नमक + प्रत्येक 6-6 ग्राम दिन में 3 बार गरारे (कुल्ला) करें।

पाइरिया

1. सेंधा नमक + खेरसार + कूट + धनियाँ + काली मिर्च + सौंठ + भुना जीरा + भुना नीला थोथा + भुनी अजवाइन का मंजन करने से पाइरिया में लाभ होता है।
2. नीला थोथा का फूला एक तोला + कपूर एक तोला + लौंग 2 तोला + दाल चीनी 2 तोला + फिटकरी का फूला 4 तोला + समुद्र झाग 8 तोला + सोना गेरू 6 तोला + शुद्ध चाक मिट्टी 16 तोला को कूटकर छान के मंजन करने से दंत शूल व पाइरिया से कुछ दिनों में ही मुक्ति मिल जाती है।
3. 1 कच्चा माजूफल + 1 माजूफल जला हुआ + 1 जली हुयी सुपाड़ी = पीसकर मंजन बनाकर मंजन करने से दाँत मजबूत होते हैं व खून आना भी बन्द हो जाता है।
4. आँवला जलाकर + सेंधा नमक मिलाकर सरसों के तेल के साथ मंजन करने से भी पाइरिया से कुछ दिनों में ही मुक्ति मिल जाती है।
5. पाइरिया के रोगी को अपना पेट साफ रखना अनिवार्य है।
6. जीरा + सेंधा नमक + हरड़ + सेमल के काँटे + दालचीनी + कोचला भस्म + भिलावा + दक्षिणी सुपाड़ी + मोलसिरी की छाल + माजूफल + अकरकरा को समभाग किसी बन्द बर्तन में जलाकर पीसकर मंजन करने से पाइरिया में अचिन्तनीय लाभ होता है।

गला बैठने पर-

कच्चा सुहागा (मटर के बराबर) मुँह में रखकर चूसें। धनिया को बूरे की चासनी में मिलाकर चाटने से लाभ।

दिल के दौरे से बचाव-

पोदीने की पत्तियाँ छाया में सुखाकर पीस कर रख लें, काली मिर्च भी पीस लें, नित्य 2 चुटकी पोदीना का चूर्ण 1 चुटकी काली मिर्च का सेवन करें।

हृदय रोग में-

आँवले का चूर्ण नित्य 6 ग्राम सेवन करें।

उच्च रक्तचाप में-

तरबूजे के बीज की गिरी व खस-खस (सफेद) पीसकर रख लें। नित्य एक चम्मच (3 ग्राम) सेवन करें।

छाती का दर्द-

अजवायन 2 चम्मच + 250 ग्राम पानी उबालें। चौथाई कप रह जाए तब नित्य काढ़ा पी लें। शीत जन्य रोग एक सप्ताह में दूर हों।

दमा-

सुहागा का फूल + मुलहठी दोनों बराबर मात्रा में बारीक पीस लें। चासनी के साथ 1 ग्राम लें। परहेज, दही, केला, चावल, ठण्डे पदार्थ।

हृदय रोग-

सूखे आँवले का चूर्ण + उतना ही बूरा = नित्य 2 चम्मच सेवन करें।

कृमि एवं पेट दर्द-

अजवायन चूर्ण 6 भाग + शुद्ध काला नमक 1 भाग = आधा चम्मच नित्य सेवन करें।

कब्ज-

दूध में उबालकर बीजों सहित 10-12 मुनक्के के 2-3 बार दिन में सेवन करें।

त्रिफला का चूर्ण 4 ग्राम (1 चम्मच भर) 200 ग्राम हल्के गर्म दूध के साथ सेवन करें।

ईसबगोल की भुसी 5-10 ग्राम तक 200 ग्राम दूध के साथ लें (कब्ज के लिए) दस्त लगने पर दही या छाछ से लें।

खाली पेट एक सप्ताह तक 2-2 सन्तरों का रस नित्य पियें।

दस्त-

सूखा आँवला 10 ग्राम + काली हरड़ 5 ग्राम = बारीक पीस कर चूर्ण बनाये नित्य 1 ग्राम सेवन करें।

सौंफ + जीरा सफेद दोनों बराबर वजन, तवे पर भून लें चूर्ण नित्य 3 ग्राम सेवन करें।

घुटनों का दर्द-

6 ग्राम विजयसार की लकड़ी + 250 ग्राम दूध + 375 ग्राम पानी + 2 चम्मच बूरा धीमी आंच पर गर्म करें। 1 कप रह जाए तब छान कर पीलें। नित्य सेवन करें। घुटनों का दर्द

पूर्ण ठीक हो जाएगा।

उल्टी आने पर–

दो लौंग + 30 ग्राम पानी में पीस कर उबालें। उस गर्म-गर्म पानी को पीने से उल्टियाँ बन्द होंगी।

आधे सिर का दर्द एवं नाक से खून गिरने पर–

गाय के दूध का ताजी घी सुबह शाम रूई से दो-चार बूंद नाक में टपकाने व सूंघने से लाभ।

चक्कर आना–

1. सूखा आंवला 6 ग्राम + धनिया दाना 6 ग्राम अधकुहा, शाम को मिट्टी के बर्तन में 250 ग्राम पानी के साथ भिगो दें। प्रातः मसल कर छान कर दो चम्मच बूरा मिला कर लें। गर्मी सम्बन्धी रोग दूर होते हैं।

खाने के बाद तुरंत शौच जाने की आदत से छुटकारा–

100 ग्राम सूखे धना + 25 ग्राम नमक पीसकर चूर्ण का नित्य आधा चम्मच (4 ग्राम) सेवन करें।

उबकाई आना, हिचकी आना, जी मिचलाना, उल्टीयाँ होना इत्यादि शिकायत होने पर लौंग व छोटी इलायची चूसें शर्तिया दवा है। तुरन्त लाभ होता है। पानी में उबाल कर पानी दें। अति उत्तम है।

रक्त वमन–

जीरा 3 ग्राम + बूरा 6 ग्राम = चूर्ण पानी के साथ दिन में 2-3 बार लें।

नाभि हटने पर या दर्द होने पर–

2 ग्राम सौंफ + 20 ग्राम गुड़ खायें 2 या 3 दिन में पूर्ण लाभ।

गठिया (जोड़ों का दर्द)–

बथुआ के ताजा पत्तों का रस 15-20 ग्राम 2 सप्ताह तक सेवन करने से लाभ।

विवाई फटने पर–

राई डेढ़ तोला + कत्था डेढ़ तोला + काली मिर्च डेढ़ तोला + गाय का घी + चमेली का तेल 6 तोला = सबको मिलाकर मरहम बनाकर विवाई में लगाने से लाभ मिलता है।

साधारण ज्वर–

1. तुलसी के 8 पत्तों के रस में 3 काली मिर्च पीसकर दिन में तीन बार लेने से साधारण ज्वर मिट जाता है।
2. नीम पंचांग (जड़, फल, फूल, पत्ती, छाल) 4 तोला + सौंठ 3 तोला + काली मिर्च 8 माशा + पीपल 1 तोला + त्रिफला 1 तोला + सेंधा नमक 1 तोला + अजवाइन 1 तोला + जवाखार 1 तोला सबका चूर्ण बनाकर 2½ लगभग आधा चम्मच माशा प्रमाण नित्य गर्म पानी से लेने से सभी ज्वर मिटते हैं।

जुकाम होने पर–

जुकाम के वेग को कम करने के लिए जायफल को पीसकर या अजवाइन गर्म करके पोटली बनाकर सूँघना चाहिये।

भक्ष्याभक्ष्य पदार्थ एवं मर्यादाएं

नोट – ऋतु परिवर्तन अष्टाह्निका पर्व पूर्णमासी से अगली अष्टाह्निक पर्व की पूर्णमासी तक जानना चाहिए। (मंगसिर वदी 1 से फाल्गुन सुदी 15 तक शीतकाल, चैत्र वदी 1 से आषाढ़ सुदी 15 ग्रीष्मकाल, श्रावण सुदी 1 से कार्तिक सुदी 15 वर्षाकाल।

क्र.	पदार्थ का नाम	शीतकाल	ग्रीष्मकाल	वर्षाकाल
1.	शक्कर या गुड़ से बूरा घर बनाने के पश्चात्	1 महीना	15 दिन	7 दिन
2.	दूध दूहने के पश्चात्	2 घड़ी	2 घड़ी	2 घड़ी
3.	दूध उबलने के बाद (स्वाद बिगड़ जाये तो त्याज्य है)	8 पहर	8 पहर	8 पहर
4.	छाछ (विलौते समय पानी डालें तो)	4 पहर	4 पहर	4 पहर
5.	(पीछे कच्चा पानी डालें तो)	2 घड़ी	2 घड़ी	2 घड़ी
6.	दही (गर्म दूध का)	8 पहर	8 पहर	8 पहर
7.	घी	(जब तक स्वाद न बिगड़े)		
8.	गुड़	(जब तक स्वाद न बिगड़े)		
9.	तेल	(जब तक स्वाद न बिगड़े)		
10.	आटा सर्व प्रकार का	7 दिन	5 दिन	3 दिन
11.	मसाले पिसे हुए	7 दिन	5 दिन	3 दिन
12.	नमक पिसा हुआ	2 घड़ी	2 घड़ी	2 घड़ी
13.	नमक मसाला मिला हुआ/गर्म किया हुआ	6 घण्टे	6 घण्टे	6 घण्टे
14.	नमक किसी पकवान/गर्म किया हुआ जब तक उस पदार्थ की मर्यादा है।			

15. खिचड़ी, कढ़ी, रायता, दाल सब्जी भात इत्यादि अधिक पानी वाले पदार्थ	2 पहर (6 घंटे)	2 पहर (6 घंटे)	2 पहर (6 घंटे)
16. मौइन वाले पकवान	8 पहर	8 पहर	8 पहर
17. पूड़ी, पराठा, हलवा, बड़ा, पुआ, ववरा मगोंड़ी, जलटिक्की, कचौड़ी, समोसा आदि	4 पहर	4 पहर	4 पहर
18. बिना पानी के पकवान लड्डू, पेड़ा, बर्फी, पंजीरी, कटे हुए काजू, लाई, मेवा इत्यादि	7 दिन	5 दिन	3 दिन
19. मीठा मिला दही तथा मक्खन	2 घड़ी	2 घड़ी	2 घड़ी
20. गुड़ मिला दही, राई नमक मिला दही, छाछ, छाछ दही में दाल मिली है।		सर्वथा अभक्ष्य ही है	
21. अमर्यादित नवनीत, अनजान फल, अनजान अनाज आदि		सर्वथा अभक्ष्य ही हैं	
22. औषधि चूर्ण काष्ठ वनस्पतियाँ या सौंठ, पीपल, बहेड़ा आदि जब तक औषधि खराब न हो		सर्वथा अभक्ष्य ही हैं।	
23. मूल बीज अदरक हल्दी आदि (गीले हैं तो)		सर्वथा अभक्ष्य ही हैं।	
24. प्रकृति के विरुद्ध पदार्थ, अनिष्ट कारक पदार्थ		सर्वथा अभक्ष्य ही हैं।	
25. अनुपसेव्य जिसका सेवन लोक विरूद्ध है		सर्वथा अभक्ष्य ही हैं।	
26. छना हुआ पानी	2 घड़ी	2 घड़ी	2 घड़ी
27. प्रासुक पानी (लौंग, इलायची आदि से)	6 घण्टे	6 घण्टे	6 घण्टे
28. कम गर्म पानी	12 घण्टे	12 घण्टे	12 घण्टे
29. उबला हुआ पानी	24 घण्टे	24 घण्टे	24 घण्टे
30. भेड़, बकरी का दूध (प्रसूति के बाद) के बाद ही भक्ष्य है।	8 दिन	8 दिन	8 दिन
31. गाय का दूध (प्रसूति के बाद)	10 दिन	10 दिन	10 दिन
32. भैंस का दूध (प्रसूति के बाद) के बाद ही भक्ष्य है।	15 दिन	15 दिन	15 दिन

निर्देश

1. औषधि देने से पहले अपने निकटवर्ती वैद्य से परामर्श ले लें तथा एक साथ एक ही औषधि दें, अनेक नहीं।

2. औषधि की मात्रा व विधि की जानकारी वैद्य या अनुभवी व्यक्ति से प्राप्त कर लें।

3. औषधि तैयार करते समय एवं देते समय महामंत्र णमोकार का स्मरण अवश्य करें, औषधि सेवन करने वाले पुरुष भी महामन्त्र व गणधर वलय में विद्यमान मंत्रों का स्मरण अवश्य करें।

4. औषधि ग्रहण करने से पूर्व एवं देने से पूर्व औषधि के प्रति दाता व पात्र का पूर्ण विश्वास होना चाहिये।

5. अविश्वास की अवस्था में औषधि का सेवन न करें।

6. त्यागी व्रतीओं के लिये संयम, साधना हेतु, उत्तम आरोग्य लाभ के लिये पूर्ण श्रद्धा के साथ गणधर वलय, जिनाष्टक स्तोत्र का पाठ अवश्य करना चाहिये।

22 अभक्ष्यों के नाम निर्देश

ओला घोर बड़ा निशि भोजन, बहु बीजक बैंगन संधान।
बड़ पीपल ऊमर कठूमर पाकर फल जो होय अजान।।
कन्द मूल माटी विष आमिष मधु माखन अरु मदिरा पान।
फल अति तुच्छ तुषार चलित रस जिनमत ये बाईस अखान।।

नोट – इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत अभक्ष्य पदार्थ हो सकते हैं जिन्हें स्वविवेक से ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, नाम, वर्ण आदि की अप्रशस्तता, प्रतिकूलता देखकर छोड़ देना चाहिए।

व्यवहार गत सूतक–पातक शुद्धि का काल प्रमाण

		जन्म	मरण
1.	3 पीढ़ी तक	10 दिन	12 दिन
2.	4 पीढ़ी तक	10 दिन	12 दिन
3.	5 पीढ़ी तक	6 दिन	6 दिन
4.	6 पीढ़ी तक	4 दिन	4 दिन
5.	7 पीढ़ी तक	2 दिन	2 दिन
6.	8 पीढ़ी तक	1 दिन	1 दिन
7.	9 पीढ़ी तक	दो पहर	दो पहर
8.	10 पीढ़ी तक	स्नान मात्र से शुद्धि	
9.	पुत्री, दासी, दास अपने घर में मरें	3 दिन	
10.	पुत्री, दासी आदि की प्रसूति स्वगृह में हो तो।	1 दिन	

11.	गाय, भैंस जानवर	1 दिन (जन्म/मृत्यु)
12.	अनाचारी स्त्री या सदा सदा पुरुष के घर	
13.	1 महीना तक के बालक का	1 दिन
14.	8 वर्ष तक के बालक का	3 दिन
15.	जितने महीने का गर्भपात हो	उतने दिन
16.	3 माह तक गर्भपात का	3 दिन
17.	गर्भपात भ्रूणहत्या करायी हो	6 माह
18.	आत्मघात करके मरा हो तो परिवार को	3 माह/6 माह भी लिखा है
19.	गृह त्यागी सन्यासी	2 दिन
20.	गृहस्थ परदेश मरण हुआ हो तो	सूचना मिलने के बाद पातक के जितने दिन शेष बचे हों।
21.	स्वगोत्री बन्धु मरें तो	स्नान मात्र से शुद्धि
22.	अन्य किसी के जातीय विजातीय दाह संस्कार में गये हों तो	स्नान मात्र से शुद्धि

नोट – (प्रसूति स्त्री के 45 दिन (कदाचित् 40 दिन) का सूतक होता है। (प्रसूति का स्थान 1 माह तक अशुद्ध रहता है।)

1. रजस्वला स्त्री चतुर्थ दिन यदि पूर्ण शुद्ध हो चुकी है तो स्नान के बाद देव, शास्त्र, गुरु के दर्शन दूर से कर सकती है।

2. रजस्वला स्त्री चौथे दिन पूर्ण शुद्ध है तो पांचवे दिन जिनपूजन व छठवें दिन आहार दान आदि देने योग्य है।

3. रजस्वला से स्पर्शित होने पर श्रावक को स्नान करना चाहिए।

4. रजस्वला स्त्री को अपने शयन, आसन, बिस्तर, वस्त्र आदि अलग ही रखना चाहिए। शुद्धि होने के बाद संसर्गित सम्पूर्ण पदार्थों की शुद्धि करें।

5. मासिक धर्म से होने पर स्त्रियों को भोजन आदि या किसी भोज्य पदार्थ के बर्तनों को भी नहीं छूना चाहिए। उस समय वह पति, पुत्र को छूने या उनके लिए भोजन बनाने के भी योग्य नहीं होती।

6. जिन घरों में महिलाओं द्वारा मासिक धर्म का पालन विधिपूर्वक नहीं किया जाता वे निःसन्देह तीव्र पाप का आश्रव बंध करती है। सन्तान में कुसंस्कार डालती है पुनः तीव्र पापों को भोगने दुर्गति में जाती है। उन घरों में सत्पात्र कभी आहार नहीं कर सकते।